संपादकीय

जैनॉलॉजी परिचय की दूसरी किताब प्रकाशित करने में हमें बहुत ही खुशी महसूस हो रही है । २००९-२०१० की वार्षिक परीक्षा में लगभग १५० विद्यार्थियों ने जैनॉलॉजी परिचय (१) के पाठ्यक्रम पर आधारित परीक्षा उत्तीर्ण की । परीक्षा उत्तीर्ण करनेवालों में लगभग ५०% विद्यार्थी कुमारवयीन थे । बाकी विद्यार्थियों में नई बहुएँ तथा युवतियाँ ज्यादा मात्रा में थी ।

जैनॉलॉजी परिचय पाठ्यक्रम का सुयश इस बात में निहित है कि हमने उसमें कालानुरूप बदल किये हैं । निबंधवजा प्रश्नों की संख्या कम की है । वस्तुनिष्ठ प्रश्नों की संख्या बढायी है । प्राकृत भाषा की ओर ध्यान आकृष्ट किया है । व्याकरणपाठ के द्वारा भाषा में रुचि बढाने का प्रयास किया है । शिक्षक और विद्यार्थियों के लिए बहुमूल्य सूचनाएँ दी है ।

इस प्रकल्प के लिए श्रीमान् अभयजी फिरोदिया ने जो हार्दिक सहयोग दिया है, उसके लिए हम उनके शतश: आभारी है ।

आशा रखते हैं कि यह परियोजना भी अन्य परियोजनाओं की तरह कामयाबी की मंजिल हासिल करें !!!

डॉ.सौ.नलिनी जोशी
मानद-निदेशक, सन्मति-तीर्थ
जून २०१०

शिक्षक और विद्यार्थियों के लिए सूचनाएँ

* 'जैनॉलॉजी परिचय (२)' का पाठ्यक्रम जून २०१० से जारी हो रहा है ।
* 'जैनॉलॉजी परिचय (२)' इस पाठ्यक्रम में मुख्यत: 'जिणवयणाइं' यह सन्मति-तीर्थ प्रकाशन की किताब अभ्यास के लिए रखी है । किताब की प्रस्तावना शिक्षक और विद्यार्थी ध्यानपूर्वक पढें । 'जिणवयणाइं' किताब के 'धम्म' से 'अहिंसा' तक के सात पाठ परीक्षा के लिए रखे हैं । किताब में प्राकृत गाथा एवं अर्थ संक्षेप में दिये हैं । सभी गाथाओं का भावार्थ और स्पष्टीकरणात्मक टिप्पण इस किताब में दिये हैं । गाथा अच्छी तरह समझने के लिए ये टिप्पण उपयुक्त होंगे । हर एक पाठ के अंत में प्रश्नसंच दिया है । शिक्षिका सभी प्रश्नों की क्लास में चर्चा करें । विद्यार्थियों से अपेक्षा है कि वे प्रश्नसंचों में दिये हुए सभी प्रश्नों के जवाब नोटबुक में लिखे । 'जिणवयणाइं' किताब में अंतर्भूत किये हुए प्रश्नमालिका (प्रश्नसंच) पर विद्यार्थी कृपया ध्यान न दें ।
* किताब के अंत में महत्त्वपूर्ण शब्दों की सूचि दी हैं । उसमें शब्दों के अंग्रेजी अर्थ भी लिखे हैं । परीक्षा में अंग्रेजी अर्थ नहीं पूछे जाएँगें । इस शब्दसूचि के आधार से वस्तुनिष्ठ प्रश्न पूछे जाएँगें । जैसे कि - नवतत्त्वों के नाम लिखिए, षड्द्रव्यों के नाम लिखिए, आकाश, काल, जीव और संसारी जीवों के दो-दो भेद लिखिए, पाँच एकेंद्रियों के नाम लिखिए इत्यादि ।
* पाठ्यक्रम की भाषा सामान्यत: 'हिंदी' ही होगी । प्रश्नपत्रिका भी 'हिंदी' में होगी ।
* भक्तामर के १ से २० तक के श्लोक प्रार्थना के तौरपर शिक्षक हर क्लास में याद करवाएँ । भक्तामर की लेखी या मौखिक परीक्षा नहीं होगी ।
* व्याकरणपाठ के अंतर्गत दिये हुए 'देव' और 'माला' नामों के विभक्तिप्रत्यय तथा वर्तमानकाल, भूतकाल और भविष्यकाल के प्रत्यय शिक्षिका हर क्लास में विद्यार्थियों से नियमित रूप से पढवाएँ ।
* लेखी परीक्षा ४० गुणों की होगी । केवल वस्तुनिष्ठ प्रश्न पूछे जाएँगे ।

प्रश्नों का स्वरूप निम्न प्रकार का होगा -

१) पाँच-छह वाक्यों में जवाब लिखिए । **(सिर्फ १)**
२) तीन-चार वाक्यों में जवाब लिखिए ।
३) एक-दो वाक्यों में जवाब लिखिए ।
४) सिर्फ नाम लिखिए ।
५) उचित जोड लगाइए ।
६) सही या गलत बताइए ।
७) उचित पर्याय चुनिए ।
८) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए ।

* शिक्षक १५ जून से पाठ्यक्रम का आरंभ करें और फरवरी के अंत तक विद्यार्थियों को पढाएँ ।
* शिक्षक और विद्यार्थी दोनों को पाठ्यक्रम की शुभकामनाएँ !

****

विषयानुक्रमणिका

क्र. विषय	पृष्ठ क्र.
प्रार्थना (भक्तामर – १ से २० श्लोक)	
१) धम्म (धर्म)	२
२) विणय (विनय)	८
३) सम्मत्त (सम्यक्त्व)	१२
४) नाण (ज्ञान)	१७
५) चारित्त (चारित्र)	२०
६) अप्पा (आत्मा)	२२
७) अहिंसा	२५
८) श्रावक का आचार	
९) व्याकरणपाठ	
अ) नामविभक्ति – देव, माला	
ब) क्रियापद के प्रत्यय – वर्तमान, भूत, भविष्य	
१०) शब्दसूचि	

****

जैनॉलॉजी–परिचय (२)
(१) धम्म (धर्म)

प्रस्तावना :

इस साल हमें ‘जिणवयणाइं’ किताब के आधार से धर्म, विनय, सम्यक्त्व आदि विषयों का स्वरूप विशेष रूप से जानना है । ‘जिणवयणाइं’ शीर्षक का अर्थ है, जिन देवों के वचन ।

इस किताब में आगम या श्रुत नाम से प्रसिद्ध ग्रंथों में से गाथा रूप वचन चयनित किये हैं । ‘जिणवयणाइं’ संग्रह में जैन आचार्य द्वारा रचित ग्रंथों में से भी गाथाएँ चुनी हुई है । यद्यपि वे गाथाएँ आचार्यरचित हैं तथापि उनका प्रतिपादन है कि जिनदेवों से परंपरा प्राप्त वचन ही वे नये शब्दों में ग्रथित कर रहे हैं । अगर इस प्रकार के प्रमाणभूत वचनों के आधार से जैनधर्म के तत्त्व जाने जाय तो उसका प्रामाण्य अबाधित रहता है । एक विषय को लेकर अनेक पहलूओं से देखने का मौका भी मिलता है ।

जैनौलॉजी–परिचय (१) पाठ्यक्रम के प्रथम वर्ष में हम सबने ‘जैनत्व की झाँकी’ किताब पढी थी । उसमें तीसरे पाठ का शीर्षक था, ‘धर्म’ । वहाँ कहा था कि, ‘जो दुःख से, दुर्गति से, पापाचार से, पतन से बचाकर आत्मा को ऊँचा उठानेवाला है, धारण करनेवाला है, वह धर्म है ।’ उसके अनंतर जैनधर्म के कुछ पर्यायवाची नाम देकर उसकी भी चर्चा की थी ।

‘धर्म’ शब्द का प्रयोग भारतीय परंपरा की विशेषता है । अगर हम धर्म शब्द का अंग्रेजी रूपांतर religion करेंगे तो वह हमारी संकुचितता होगी । क्योंकि religion के अलावा, behaviour (शील), conduct (आचार), merit (पुण्य), virtue (नैतिक गुण), piety (पवित्रता), non-violence (अहिंसा), truth (सत्य), law, duty (कर्तव्य), observance (रीति), donation (दान), kindness (दया), quality (गुणधर्म), आदि विविध अर्थों में संस्कृत तथा प्राकृत साहित्य में धर्म शब्द के प्रयोग पाये जाते हैं ।

जैनधर्म के प्राचीन आचार्यों ने अलग–अलग काल में, अलग–अलग भाषाओं में ‘धर्म’ शब्द का वर्णन और स्पष्टीकरण किस प्रकार किया है, यह हम गाथाओं के आधार से देखेंगे ।

भावार्थ स्पष्टीकरण :

(१) धम्मो मंगलमुक्किट्ठं ---

‘दशवैकालिक’ नाम के आगमसूत्र की यह पहली गाथा है । भ. महावीर की शिष्य परंपरा में सुधर्मा, जंबू और प्रभव के बाद ‘शय्यंभव’ आचार्य हुए । अपने किशोरवयीन पुत्र ‘मणग’ को जैनधर्म के आचार–विचार समझाने के लिए उन्होंने दस अध्ययनों की रचना की । उसे ‘दशवैकालिक सूत्र’ कहते हैं । उसकी पहली गाथा में बहुत हीसरल–सुबोध शब्दों में ‘धर्म’ के बारे में कुछ तथ्य कहे हैं ।

जगत् में सबसे ‘मंगल’ और ‘उत्कृष्ट’ चीज है ‘धर्म’ । ‘मंगल’ शब्द दो शब्दों से बना हुआ है । ‘मं’ याने अशुभ, पाप, बुरी चीजें । ‘गल’ याने गलना, दूर हो जाना । धर्म का प्रवेश होते ही सारे अशुभ भाव याने बुरेखयाल दूर हो जाते हैं । इसी वजह से धर्म को उत्कृष्टता प्राप्त होती है । आगे जाकर धर्म के तीन विशिष्ट लक्षणों का (distinctive features) निर्देश किया है । वे हैं अहिंसा (non-violence), संयम (restraint) और तप (penance) । ये तीनों केवल जैन धर्म के ही नहीं, किसी भी धर्म के प्राणभूत तत्त्व (vital tenets) हैं ।

गाथा की दूसरी पंक्ति में ‘देवगति’ के जीव और ‘मनुष्यगति’ के जीवों के बारे में खास बात कही है । केवल मनुष्यप्राणी ही ‘धर्म’ धारण करता है । विवेक, संयम, तप आदि के सहारे पुरुषार्थ करके आत्मिक उन्नति करसकता है । मोक्ष का अधिकारी मानव ही हो सकता है, स्वर्गगति का देव नहीं । इसी विशेषता के कारण देव भी धर्म की निरंतर आराधना करनेवाले मनुष्य को वंदन के पात्र समझते हैं । जैन शास्त्रों में वर्णन है कि जिनदेवों के,तीर्थंकरों के,

केवलियों के उपदेश सुनने के लिए या वंदन–भक्ति करने के लिए देवों के समूह भी आते थे । भक्तामर स्तेत्र के आरंभ की पंक्ति में यही बात कही है ।

देवोंद्वारा वंदित होने के लिए मानव को चाहिए की 'धर्म' की भावना उसमें सदाकाल (24 X 7) उपस्थित होनी चाहिए । 'धर्म' कोई कभी–कभार प्रसंगवश करने की चीज नहीं है । अहिंसा, संयम और तप जैसे तत्त्वों से, जो जागृति में ही क्या सपने में भी नहीं बिछुडता, ऐसे मानवी जीवों को देव भी पूजार्ह मानते हैं ।

जैनों ने माना है कि चौबीस तीर्थंकर मनुष्यकोटि में जन्म पाकर मोक्षगामी हुए हैं । वे कोई विष्णु के मानवी 'अवतार' नहीं है ।

चेतनत्व (consciousness) की सर्वोच्च शुद्ध अवस्था प्राप्त करवाने की क्षमता (quality) 'धर्म' में है । इसी कारण वह मंगल और उत्कृष्ट है ।

****

(२) धम्मो वत्थु–सहावो ---

'कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा' दिगंबर संप्रदाय का एक प्राचीन (ancient) ग्रंथ है । यह 'शौरसेनी' नाम की 'प्राकृत' भाषा में लिखा है । अध्रुव (transitoriness), अशरण (helplessness), एकत्व (loneliness) आदि भावना जैन शास्त्र में 'अनुप्रेक्षा' (reflections) नाम से पहचानी जाती है । उसमें एक है – 'धर्म' भावना ।

प्रस्तुत गाथा में 'धर्म' की चार व्याख्याएँ या स्पष्टीकरण पाये जाते हैं ।

१) हरेक वस्तु (real object) का जो स्वभाव, स्वाभाविक गुणधर्म है, उसे 'धर्म' कहा है । जैसे 'शीतलता' पानी का अथवा 'उष्णता' अग्नि का 'धर्म' है । यह व्याख्या वैज्ञानिक (scientific) शाखाओं की तरह वस्तुनिष्ठ (objective) है ।

२) गाथा की प्रथम पंक्ति के उत्तरार्ध में क्षमा (forbearance, forgiveness), मार्दव (modesty, humility), आर्जव (straight forwardness) आदि दस उच्च नैतिक मूल्यों (ethical values) को अथवा सद्‌गुणों (virtues) को 'धर्म' कहा है । इस स्पष्टीकरण से हमें सद्‌गुणों से युक्त होने की प्रेरणा मिलती है ।

३) गाथा की दूसरी पंक्ति में 'रत्नत्रय' याने सम्यक् दर्शन–ज्ञान–चारित्र को 'धर्म' कहा है । (Enlightened world-view, knowledge and conduct) ये तीनों तत्त्व रत्न जैसे मूल्यवान (valuable) और स्वयंप्रकाशी (self-illuminating) कहे गये हैं । ये तीनों जैन शास्त्र के मूलाधार (foundation) है ।

४) गाथा के अंत में 'अन्य जीवों की रक्षा करने की दृष्टि और व्यवहार' को धर्म कहा है । सभी प्रकार की हिंसा तो हम टाल नहीं सकते लेकिन अनावश्यक (unnecessary) हिंसा टालने का आदेश यहाँ दिया है और उसे 'धर्म' कहा है । खानपान, वस्त्र, वाहन आदि की मर्यादा करके हम 'जीवरक्षा' कर सकते हैं । वाणी के अथवा क्रोध आदि के संयम (control) से भी हिंसा टाली जा सकती है ।

चार भिन्न भिन्न पहलूओं से यहाँ 'धर्म' की व्याख्या करने का सराहनीय प्रयास किया है ।

****

(३) सोही उज्जुयभूयस्स ---

यहाँ 'घय' का मतलब है 'घी' और 'पावए' का मतलब है 'पावक' याने पावन, पवित्र करनेवाला 'अग्नि' । 'दूध' मानवी आरोग्य ठीक रखने में बहुत ही उपयुक्त चीज मानी गयी है । 'दूध' नैसर्गिक अवस्था में रखें तो जल्द ही खराब हो जाता है । अग्नि पर तपाए तो कुछ घंटे 'शुद्ध' रखा जा सकता है । उसपर मलाई जमा होती है। उपयुक्त सद्‌विचार रूपी दही मलाई में अच्छी तरह घुले–मिले तो विचार–मंथनरूप बिलौनी से नवनीत–मक्खन बनता है । मक्खन में भी अशुद्धि तो होती ही है । अग्नि पर तपाकर धीरे धीरे घी बनता है । घी को और तपाए तो अति–शुद्ध घी स्वयं अग्निस्वरूप हो जाता है ।

यह एक दृष्टांत (example) है । अशुद्ध संसारी मानवी जीव विवेक से, विचार-मंथन से और तप से पूर्ण शुद्ध होता है । जीव की पूर्ण शुद्धि याने निर्वाण या मोक्ष है । जिस प्रकार अग्नि में सिंचित (sprinkled) घी अग्निस्वरूप होता है उसी प्रकार आत्मिक शुद्धि से जीव मोक्ष प्राप्त करता है ।

संसारी जीव के शुद्धिकरण (purification) की प्रक्रिया में धर्म सहायक होता है । जो व्यक्ति मूलत: सरलस्वभावी (straight forward) है उसे आत्मिक उन्नति (spiritual progress) में धर्म मददगार होता है ।

प्रस्तुत गाथा 'उत्तराध्ययनसूत्र' नाम के अर्धमागधी ग्रंथ से उद्धृत की है । उदाहरणों के द्वारा धर्म के तत्त्व समझाना उत्तराध्ययनकी खासियत है । श्वेतांबर परंपरा के अनुसार 'उत्तराध्ययनसूत्र' भ. महावीर की अंतिम वाणी है ।

****

(४) हिंसारंभो ण सुहो ---

'कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा' ग्रंथ की इस गाथा में 'हिंसा' में अनुस्यूत् (intended)(incorporated) 'पाप' और 'दया' में अनुस्यूत 'धर्म' का जिक्र किया है ।

जैन शास्त्र में 'हिंसा' का पर्यायवाची नाम 'आरंभ' है । कुछ लोग इस प्रकार विचार करते हैं कि देव अथवा गुरु के निमित्त की जानेवाली हिंसा 'हिंसाकोटि' में नहीं आती । जैसे कि भगवद्‌गीता में कहा है, ''यज्ञ के लिए किये हुए कर्म बंधनकारक नहीं होते ।'' जैन दृष्टि से यह विचार उचित (proper) नहीं है । देव-गुरु-धर्म किसी के भी नामपर की गयी हिंसा 'पाप' ही है । इस में अपवाद (exception) नहीं है ।

जबरदस्ती से कराया हुआ धर्मांतर (conversion), धर्म के नामपर छेडे गये युद्ध, जिहाद आदि को जैन धर्म में कुछ भी स्थान नहीं है । सब हिंसा के ही अन्यान्य रूप (varied forms) हैं ।

अब सोचना चाहिए कि आजकल जैन धार्मिक आचार में भी पूजा-प्रतिष्ठा, दिखावा, बोलियाँ, उपवास का आडंबर, भोजन-समारंभ, जन्म-दीक्षा-जयंती महोत्सव, कई प्रकार की किताबें छपवाना, विविध प्रतियोगिताएँ, लकी कूपन्स, नृत्य-गायन के समारोह आदि नयी नयी बातें आने लगी है । इस में से किसको 'धर्म की प्रभावना' मानी जाय और किसको 'निरर्थक आरंभ' माना जाय, यह साधुवर्ग और श्रावकवर्ग के सोचविचार की बात है ।

आचार्यश्री ने गाथा में कहा है कि धर्म की आधारशिला 'दया' है । पंचेंद्रियों की हिंसा तो हम नहीं करते लेकिन सूक्ष्मता से देखे तो, 'विविध आडंबरों में निहित आरंभ-समारंभ भी क्या टालने योग्य हैं ?' इसके ऊपर भी जैन समाज में विचारमंथन होना चाहिए ।

****

(५) धम्मं ण मुणदि ---

धर्माचरण के बारे में एक से बढकर एक कठिन बातें कौनसी है, इसका जिक्र इस गाथा में किया है ।

१) 'धर्म' का सच्चा स्वरूप पकड में आना पहिली कठिनाई है ।

२) कौटुंबिक संस्कार, गुरु का उपदेश, शास्त्रों का वाचन, उसके ऊपर गहराई से विचार, आदि के द्वारा धर्म का तत्त्व बडी मुश्किल से जाना जा सकता है ।

३) अहिंसा, संयम, तप, दया, दान, अपरिग्रह आदि तत्त्व और उनकी व्याख्याएँ आदि का रटन (pit-pat) करके उसके ऊपर हम व्याख्यान भी दे सकते हैं । लेकिन प्रत्यक्ष व्यवहार की बात आएँ तो अनेक भौतिक वस्तुओं से मिलनेवाला सुख पाने की (material pleasures) लालसा (lust) से उच्च तत्त्वों का विसर्जन कर देते हैं । मोहरूपी पिशाच (gobling) मानो हमें गुमराह कर देता है ।

धर्म का ज्ञान और धर्म के आचरण के बीच लोभ-मोह के भूत-पिशाच खडे हैं । इन्हीं को जैन धर्म ने 'कषाय'

कहा है । क्रोध (anger), मान (pride), माया (deceit) और लोभ (greed) अपने खुद के मन में ही उत्पन्न विकार (passions) है । इनको जैन शास्त्र में 'अंतरंग शत्रु' (internal enemies) कहा है ।

इनको अगर रोक न लगाया तो 'धार्मिक' होने की संभावना ही नहीं है ।

****

(६) काइं बहुत्तइं जंपियइं ---

दिगंबर आचार्य देवसेनकृत यह गाथा उनके 'सावयधम्मदोहा' ग्रंथ से ली है । संत तुलसीदास या संत कबीर के 'दोहे' बहुत ही प्रसिद्ध हैं । लेकिन उनके बहुत पहले, दसवीं सदी में जैनाचार्यों ने 'अपभ्रंश' नाम की प्राकृतभाषा में 'दोहा' लिखने की परंपरा शुरू की । इस ग्रंथ में समकालीन (contemporary) बोलीभाषा में श्रावकों को 'धर्म' समझाया है । हर तरह से धर्म की परिभाषा करके आखिर में कविश्री कहते हैं - 'बहुत कहने से क्या फायदा ? धर्म का एक छोटा सा व्यावहारिक लक्षण मैं कहता हूँ । खुद को जो प्रतिकूल, अप्रिय, अवांछित (undesirable) है, वह दूसरों के प्रति मत कीजिए । बस ! इतने से तत्त्व का अगर पालन करे तो धर्म का मूल तुम्हारे पकड में आयेगा ।'

इस गाथा में यद्यपि प्रतिकूलता टालने का उपदेश है, तथापि यह भी गृहीत है कि जो अपने को अनुकूल, प्रिय या वांछित है, वहीं दूसरों के प्रति कीजिए । इसी वृत्ति को जैनशास्त्र में एवं भगवद्गीता में भी 'आत्मौपम्य-बुद्धि' अथवा 'समत्व-बुद्धि' कहा है । सामान्य मनुष्य का यह स्वभाव होता है कि अपने प्रति और दूसरों के प्रति उसकेमन में दोहरे मापदंड (double standards) होते हैं । टी.व्ही. पर फिफ्टी-फिफ्टी बिस्किट्स की एक विज्ञापन (advertise) आती है । सासूजी कहती है, 'बहू ! इस घर में तुम्हारे मायकेवालों का महत्त्व नहीं होना चाहिए ।' उसीसमय मन में कहती है, 'मैं तो छह-छह महिनों मायकेवालों को घर में रखती हूँ ।' फिर कहती है, 'मेरे बेटको मुठ्ठी में रखने की कोशिश मत करो ।' मन में कहती है, 'मैं तो मेरे पति को पैंतीस सालों से उंगलियों पर नचा रहीं हूँ।' दोहरे मापदंड का उदाहरण इससे अच्छा दूसरा क्या हो सकता है !

अपने और दूसरों के प्रति समान न्यायबुद्धि का उपयोग करने को आचार्यश्री ने धर्म की कोटि में रखा है । जैनशास्त्र ने यही संदेश 'जिओ और जिने दो (live and let live) इन शब्दों में अंकित किया है ।'

(७) धम्मे इक्कु वि बहु भरइ ---

यह गाथा भी आ. देवसेनकृत 'सावयधम्मदोहा' से ही चुनी है । यहाँ धर्म और अधर्म का लक्षण उनके कार्य या परिणामों के द्वारा समझाया गया है । वटवृक्ष (banyan tree) का उदाहरण धर्म के लिए और ताड(palm tree) का उदाहरण अधर्म के लिए प्रयुक्त किया है ।

वटवृक्ष विशाल एवं हरीभरी टहनियों से घिरा हुआ रहता है । स्वयं शीतल होता है और पथिकों को शीतल छाया प्रदान करता है । इसी प्रकार धर्म स्वयं उच्च मूल्यों से युक्त होता है और उसका आश्रय लेनेवाले कोभी उन गुणों से शांतिरूप लाभ होता है ।

ताड का वृक्ष खुरदरा, अल्पशाखावाला एवं छायारहित होता है । स्वयं धूप, गर्मी सहता है । उसका आश्रय लेनेवाले को कभी भी छाया नहीं मिल सकती ।

इन उदाहरणों के प्रति हम तटस्थ लक्षणों की सहायता से देख सकते हैं । वटवृक्ष या धर्म, खुद किसी को आश्रय के लिए नहीं बुलाता । ताडवृक्ष भी किसी के आने पर रोक नहीं लगाता । हमें किसका आश्रय लेना है, यह पथिक की मनोवृत्ति पर निर्भर है । जिसको आंतरिक समाधान, मानसिक शांति चाहिए वह अपने आप धर्म का आश्रय करेगा । चित्तों के विकाराधीन होकर अधर्म का आश्रय करेगा तो चिढचिढापन, असमाधान एवं अशांति का ही भागीदारबनेगा ।

दृष्टांतों (examples, illustrations) के द्वारा धर्म-अधर्म का स्वरूप समझाना यह धर्मोपदेशकों की एक खासियत रहती है । दृष्टांतों के आधार से हम मानसचित्र बनाकर दीर्घकाल स्मरण में भी रख सकते हैं ।

(८) छन्नं धम्मं ---

'जयवल्लभ' नाम के श्वेतांबर आचार्यश्री ने जैन माहाराष्ट्री भाषा में प्राकृत सुभाषितों का एक बहुत ही अच्छा सुभाषित संग्रह बनाया है । उस संग्रह का नाम है - 'वज्जालग्ग' । इन सुभाषितों में भाषासौंदर्य और विचारसौंदर्य दोनों निहित होते हैं । इनसे हम बोध भी प्राप्त कर सकते हैं ।

मनुष्य को 'भाग्यशाली' कब कहा जाय इसके चार निकष इस गाथा में दिये हैं । भाग्यशाली आदमी दान, दया, उपवास, तप, जप आदि स्वरूप में धर्म तो करता है लेकिन वह निजी जीवन में 'छन्न' याने अप्रकट रूप में करता है । अपने धर्माचरण का दिखावा या आडंबर नहीं करता । उसका पुरुषार्थ या पराक्रम उद्योगशीलता के रूप में हमेशा प्रगट रहता है । उसकी कामभावना स्व स्त्री के अलावा अन्य अन्य स्त्रियों की अभिलाषा से मुक्त रहती है । किसी भी तरह से अपने चारित्र्य पर वह दाग नहीं लगने देता । सामाजिकता का खयाल मन में रखकर वह कलंक से दूर ही रहता है ।

इस गाथा में सामान्य मनुष्य के नैतिक वर्तन का चार मुद्दों से जिक्र किया है । लेकिन धर्म के बारे में अत्यावश्यक चीज बतायी है कि किसी भी प्रकार खुद की धार्मिकता का प्रदर्शन मत करें ।

(९) धम्मो धणाण मूलं ---

यह गाथा भी 'वज्जालग्ग' में एक सुभाषित के रूप में पायी जाती है । चार बातों को मूल कहा है । पत्नी, विनय और दर्प के बारे में जो कहा है वह सत्य है और व्यवहार्य भी है । लेकिन 'धम्मो धणाण मूलं' इस पदावलि का अर्थ थोडे अलग तरीके से लगाना होगा ।

हमें इस जन्म में प्राप्त जो भी धन, दौलत, सुख-समृद्धि है, वह हमारे पूर्वकृत धर्म का याने शुभक्रियाओं का ही फल है । दूसरे नजरिये से हम यह भी कह सकते हैं कि धार्मिकता का याने साधनशुचिता का (pious or faultless resourses) आधार लेकर जो संपत्ति कमायी जाती है वही हमें सुख-शांति देने में समर्थ होती है ।

'धम्मो धणाण मूलं' का अर्थ इसी प्रकार लगाना ही ठीक होगा अन्यथा धर्म संपत्ति का मूल है इस अर्थ को लेकर काम नहीं चलेगा । क्योंकि व्यवहार में अधिकसारी धन संपत्ति, अधर्म के सहारे ही कमायी जा सकती है ।

सारांश :

इन गाथाओं में सामान्यत: धर्म का स्वरूप बताया गया है । जैन, हिंदु, ख्रिश्चन, शीख आदि शब्द तो धर्म के विशेषण है और वे विशिष्ट आचारपद्धति के द्योतक है । इन गाथाओं के अभ्यास से मालूम होता है कि जैनधर्म की व्याख्या करने के ये प्रयास नहीं है क्योंकि 'धर्म' यह संकल्पना बहुआयामी (dynamic) है । इसलिए जैनधर्म के आचार्यों ने भी अनेक पहलूओं से धर्म का चिंतन करके अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये हैं ।

****

स्वाध्याय – १

१) 'जिणवयणयाइं' शब्द का अर्थ लिखिए । (एक वाक्य) (प्रस्तावना)

२) 'जैनत्व की झाँकी' किताब के आधार से 'धर्म' का अर्थ स्पष्ट कीजिए । (एक वाक्य) (प्रस्तावना)

३) भारतीय परंपरा में 'धर्म' शब्द के अंतर्गत कौनकौनसे अर्थों का समावेश होता है । (एक वाक्य) (प्रस्तावना)

४) दशवैकालिकसूत्र के रचयिता कौन है ? उन्होंने इस सूत्र की रचना किसके लिए और क्यों की ? (तीन वाक्य) (गाथा १ भावार्थ)

५) कौनसे तीन लक्षणों के कारण धर्म उत्कृष्ट और मंगल है ? (एक वाक्य) (गाथा १ भावार्थ)

६) किस प्रकार के मनुष्य को देव भी वंदन करते हैं ? (एक वाक्य) (गाथा १ भावार्थ)

७) कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा नाम का ग्रंथ किस भाषा में लिखा है ? (एक वाक्य) (गाथा २ भावार्थ)

८) 'धम्मो वत्थुसहावो' इस गाथा में कौनसे चार प्रकार से 'धर्म'का स्पष्टीकरण किया है ? (चार-पाँच वाक्य) (गाथा २ भावार्थ)

९) 'घी से सिंचित अग्नि' का दृष्टांत स्पष्ट कीजिए । (दो-तीन वाक्य) (गाथा ३ भावार्थ)

१०) कौनसे निमित्तों से हिंसा नहीं करनी चाहिए ? क्यों ? (दो-तीन वाक्य) (गाथा ४ अर्थ)

११) जैनशास्त्र में हिंसा का पर्यायवाची नाम कौनसा है ? (एक वाक्य) (गाथा ४ भावार्थ)

१२) धर्म का ज्ञान और धर्म के आचरण के बीच कौन उपस्थित होते हैं ? (एक वाक्य) (गाथा ५ भावार्थ)

१३) 'सावयधम्मदोहा' ग्रंथ किसने और कौनसी भाषा में लिखा है ? (एक वाक्य) (गाथा ६ भावार्थ)

१४) 'काइं बहुत्तइं जंपियइं' इस गाथा में आचार्यश्री कौनसे प्रकार के धर्माचरण की अपेक्षा करते हैं ? (एक वाक्य) (गाथा ६ भावार्थ)

१५) वटवृक्ष और ताडवृक्ष के द्वारा धर्म और अधर्म के बारे में क्या कहा है ? (पाँच-छह वाक्य) (गाथा ७ भावार्थ)

१६) 'वज्जालग्ग' सुभाषित-संग्रह कौनसे आचार्य ने कौनसी भाषा में लिखा है ? (एक वाक्य) (गाथा ८ भावार्थ)

१७) भाग्यवान पुरुषों को कौनसी चार बातों की प्राप्ति होती है ? (एक वाक्य) (गाथा ८ अर्थ)

१८) 'धम्मो धणाणं मूलं', इस पदावलि का अर्थ स्पष्ट कीजिए । (पाँच-छह वाक्य) (गाथा ९ भावार्थ)

****

(२) विणय (विनय)

प्रस्तावना :

भारतीय परंपरा में विनय शब्द दो अर्थों से प्रयुक्त किया जाता है । 'वि+नम्' क्रियापद से बना हुआ यह नाम नम्रता याने modesty का द्योतक है । विनय का दूसरा अर्थ शिक्षा याने knowledge या education भी है । गुरुकुल परंपरा में नम्रता के बिना गुरू से शिक्षा पायी नहीं जा सकती थी । इसी वजह से बहुत बार शिष्य को 'विनेय'भी कहा है । नम्रता और शिक्षा एक ही सिक्के के दो पहलू बताकर भारतीय संस्कृति ने एक अपूर्व आदर्श ही प्रस्तुतकिया है ।

भावार्थ स्पष्टीकरण :

(१) एवं धम्मस्स विणओ मूलं ---

दशवैकालिक सूत्र के नौवें अध्ययन का नाम 'विनयसमाधि' है । शय्यंभव आचार्य ने अपने अल्पायुषि पुत्र 'मणग' को जिन-जिन विषयों के सरल उपदेश दिये, उनमें एक महत्त्वपूर्ण विषय है 'विनय' । विनय की महत्ता इसीसे सिद्ध होती है । उत्तराध्ययनसूत्र का पहला अध्ययन भी 'विनयश्रुत' ही है । भ. महावीर ने भी नवदीक्षित साधु को उपदेश देने का प्रांरभ विनय से ही किया है ।

इस गाथा में जो पदावलि प्रयुक्त की है, उससे यह स्पष्ट होता है कि यहाँ धर्म को वृक्ष की उपमा दी है । जिस प्रकार जमीन में सुदूर तक पहुँचे हुए मूल पोषक तत्त्व लेकर पूरे वृक्ष में फैलाते हैं, उसी प्रकार विनीत वृत्ति के कारण अनेक धर्मानुकूल गुणों का पोषण होता है । कीर्ति और श्रुत याने ज्ञान ये दोनों मानों धर्मवृक्ष के तना, शाखाएँ एवं पल्लव है । अगर मूल और तना सुदृढ हो तो धर्मरूपी वृक्ष पर रूप, रस, गंध से भरा हुआ अच्छा खासा फल भीलगता है । गाथा में इस फल को ही मोक्ष कहा है ।

धर्मरूपी वृक्ष के मोक्षफल का पहला सुदृढ आधार मूल याने विनय ही है ।

(२) विणओ मोक्खद्दारं ---

भगवती आराधना आ. शिवकोटिद्वारा रचित एक प्राचीन दिगंबर ग्रंथ है । वह शौरसेनी नाम की प्राकृत भाषा में निबद्ध है । उसके आरंभ में चार प्रकार की आराधनाओं का निर्देश है । जैनधर्म में वारंवार उल्लिखित ज्ञान,दर्शन, चारित्र और तप ये चारों आराधनाएँ हैं ।

इस गाथा में यद्यपि प्रासाद (palace) का रूपक स्पष्टत: से नहीं दिया है तथापि गाथा में यही रूपक अंतर्भूत है । धर्मरूपी प्रासाद के ये चार परकोटे हैं । हर एक का अलग-अलग प्रवेशद्वार है और वहाँ जागृत रक्षक भीमौजूद है । प्रासाद का महाद्वार कितना भी बडा हो, व्यक्ति को अंदर पहुँचानेवाला दरवाजा छोटा ही होता है। धर्मप्रासाद में प्रवेश करने के इच्छुक व्यक्ति ने छोटे दरवाजे से झुककर अंदर जाना अपेक्षित है । इसलिए उस दरवाजे कानाम भी 'विनयद्वार' है । आगे जाकर इसी विनय के सहारे संयम, तप और ज्ञान में धीरे-धीरे प्रवेश होता है । राजनीति में चाहे साम-दाम-दंड-भेद चारों उपाय मौजूद है लेकिन यहाँ केवल सामोपचार याने विनय का ही एक पर्याय उपलब्ध है। शिक्षा दोनों से मिलती है - आचार्यों से और चतुर्विध संघ से । इसलिए आचार्य के प्रति भी विनीत वृत्ति अपेक्षित है और संघ के प्रति भी विनयाचार अपेक्षित है । धन, कीर्ति, अहंकार आदि बाहर छोडकर ही धर्मरूपी प्रासाद में, विनयरूपी द्वार से प्रवेश किया जा सकता है ।

(३) कित्ती मेत्ती ---

यह गाथा भी 'भगवती आराधना' ग्रंथ से ही चयनित की है । इसका भावार्थ यह है कि विनय यह मूलगामी गुण

है । अगर वह अंत:करण में मौजूद है तो उसीके आधार से कीर्ति, मैत्री, अहंकार-लोप आदि कई गुण हम प्राप्त कर सकते हैं । हर एक गुण की अलग-अलग आराधना नहीं करनी पडती । जिस प्रकार एक अच्छा, सुदृढ बीज बोनेपर, असंख्यगुणा बीज (धान्य)प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार विनीत वृत्ति के आधार से अपने आप कई सद्‌गुण हमारे आश्रय में आ जाते हैं ।

यहाँ 'गुणा' शब्द हम multiplication इस अर्थ में भी ले सकते हैं । विनय का अर्थ अगर knowledge किया तो ग्रीक तत्त्वज्ञ सॉक्रेटिस ने 'knowledge is virtue' यह कही हुई कहावत भी अर्थपूर्ण प्रतीत होती है ।

(४) विवत्ती अविणीयस्स ---

यह गाथा पूर्वोक्त दशवैकालिकसूत्र के 'विनयसमाधि' अध्ययन से ही ली गयी है । कौनसी भी बात दोनों तरफ से जानना (दुहओ नायं) आवश्यक होता है । विनीतता से होनेवाले लाभ अगर पूरी तरह जानने हैं, तो अविनीतता से याने औद्धत्य rudeness से होनेवाली हानियाँ भी अच्छी तरह ध्यान में रखनी चाहिए ।

भावार्थ यह है कि विनय मानों 'Euro' नाम का सार्वकालीन, सार्वदेशिक चलन है । किसी भी प्रसंग में वह उपयुक्त ही है । अविनय खोटा सिक्का है । वह हमें नाना प्रकार के संकट और दु:खों में ही डालनेवाला है । सिर्फ धर्माचरण के प्रांत में ही नहीं तो व्यावहारिक जगत् में भी विनय और अविनय से होनेवाले लाभ और नुकसान ध्यान में रखने चाहिए ।

विनय और अविनयसंबंधी इस चर्चा का सामान्यीकरण (generalisation) करके, हमें इस गाथा से यह बोध मिलता है कि जगत् की किसी वस्तु या व्यक्ति का भाव और अभाव दोनों जानने से ही, उसकी सच्ची अर्हता (worth) पूरी तरह से जानी जा सकती है ।

(५) मणुयहं विणयविवज्जियहं ---

'सावयधम्मदोहा' की इस गाथा में भी, 'विनय के अभाव में क्या होता है ?' - इसका उदाहरण के द्वारा वर्णन किया है । विनय के द्वारा यदि विविध गुणों की आराधना अपने आप हो जाती है तो यह भी स्वाभाविक ही है कि विनय के अभाव में अनेक गुण अपने आप नष्ट हो जाते हैं ।

सरोवर अगर भरापूरा है तो विविध प्रकार के, आकार के, गंध के कमलों से समृद्ध होता है । क्योंकि कमल तो पानी के आधार से ही शोभा धारण करते हैं । सरोवर का पानी अगर सूख जाय तो कमलों का नाामोनिशान भी नहीं रहेगा । 'विनय के आधार से विविध गुणों का प्रकट होना और विनय के अभाव से गुणों का नष्ट होना'- इस दृष्टांत में अभिप्रेत है । इसी को पिछली गाथा में 'संपत्ति' और 'विपत्ति' कहा है ।

(६) विणएण विप्पहूणस्स ---

भगवती आराधना में, 'विनय के अभाव में, उच्च शिक्षा किस प्रकार निरर्थक हो जाती है', इसका जिक्र किया है । उच्च शिक्षा से अगर अहंभाव तथा घमंड की मात्रा बढे तो वह कोरा पांडित्य रह जाता है । इस प्रकार की अहंकारी विद्वत्ता न उसे लाभदायी होती है न दूसरों को । इसलिए उसे निरर्थक कहा है ।

'विद्या विनयेन शोभते' यह वचन सुप्रसिद्ध है । इस गाथा में विनय को शिक्षा का फल कहा है । इसके पहले की गाथाओं में विनय को शिक्षा का मूल भी कहा है । प्रश्न यह है कि एक ही विनय मूल और फल कैसे होसकता है ? यह गुत्थी थोडा विचार करने पर सुलझायी जा सकती है । नम्रताभाव के बिना सच्ची शिक्षा प्राप्त ही नहीं होती इसलिए वह मूल है लेकिन सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद आदमी जान जाता है कि ज्ञान का क्षितिज अगाध है । इस भावना से वह अधिकाधिक विनम्र हो जाता हैं । यही बात एक संस्कृत सुभाषितकार ने 'भवंति नम्रा: तरव: फलागमै:' इन शब्दों में कही है । मतलब है कि बहुत से फल लगने पर वृक्ष अधिकाधिक झुक जाते हैं । इसी अर्थ

में विनय शिक्षा का फल भी है ।

मूल और फल ये दोनों रूपों में विनय कल्याणकारक ही है ।

(७) अणासवा थूलवया ---

उत्तराध्ययनसूत्र के प्रथम 'विनयश्रुत' अध्ययन की इस गाथा में परस्परविरोधी स्वभाव के दो शिष्यों का वर्णन किया है । ये दोनों शिष्य अपने-अपने स्वभावविशेषों के कारण गुरु में ही बदलाव लाते हैं । पहला शिष्य 'अनश्रव' याने गुरु का हितोपदेश नहीं सुननेवाला, 'स्थूलवच' याने अनाब-शनाब बोलनेवाला और 'कुशील' याने चारित्र्यहीन है । दुर्गुणों से भरा हुआ यह शिष्य, स्वभाव से मृदु होनेवाले गुरु को भी प्रसंगवश चंड बनाता है, याने क्रोधित कराता है । इस प्रकार के दुर्गुणी शिष्य का वर्णन एक जैनकथा में आता है । चंडकौशिक के पूर्वभव की कथा,इसके बारे में हमेशा उदाहरण के तौर पर दी जाती है ।

दूसरे प्रकार का शिष्य 'चित्तानुग' याने गुरु का मन जाननेवाला और 'दाक्षिण्य' (courtesy, chivalry) से युक्त है । अपने इन गुणों के कारण मार्गभ्रष्ट गुरु को भी वह ठिकाने लाता है । इसके बारे में शैलक राजर्षिऔर पंथक शिष्य की कथा 'ज्ञाताधर्मकथा' में पायी जाती है ।

'विनीतता और अविनीतता दूसरों में बदलाव ला सकती है' इसका प्रत्यय इस गाथा से एवं उससे जुडी हुई कथाओं से आता है ।

(८) नापुट्ठो वागरे किंचि ---

उत्तराध्ययन की इस गाथा में आदर्श विनयी शिष्य का वर्णन है । गुरु के प्रति शिष्य ने किस प्रकार के भाव धारण करने चाहिए इसका जिक्र किया है ।

गुरु ने कुछ न पूछने पर भी बडबड करते रहना, अध्यापन में बाधाकारक होता है । गुरु के क्रोध के डर से, शिष्य ने असत्य बोलना, अंतिमत: शिष्य के लिए हानिकारक हो सकता है । शिष्य को चाहिए कि वह गुरु के प्रताडन को भी अथवा स्तुति को भी शांतता से धारण करे । क्योंकि दोनों उसे ही अंतिमत: लाभदायक है ।

सामान्यत: जैनशास्त्र में अप्रिय सत्य न बोलने का निर्देश दिया जाता है । लेकिन इस गाथा से यह सूचित होता है कि गुरु प्रसंगवशात अप्रिय सत्य बोलते हैं और सच्चे शिष्य ने वह सत्य अप्रिय होनेपर भी गुरु के प्रति द्वेषभाव नहीं धारण करना चाहिए ।

(९) थंभा व कोहा व मयप्पमाया ---

प्राकृतिक परिवेश में बांस किस प्रकार बढते हैं और किस प्रकार नष्ट होते हैं, इस निरीक्षण पर आधारित यह गाथा है । अपने पुत्र एवं शिष्य 'मणक' को अविनय से होनेवाली हानि समझाने के लिए, शय्यंभवाचार्य ने बांसका उदाहरण दिया है ।

बांस को हर साल 'फूल' नहीं लगते । दस-बारह साल में कभीकभार बांस पुष्पित, फलित हो जाता है । उसके बारे में प्राकृतिक योजना इस प्रकार रहती है कि जब भी बांस पुष्पित, फलित होता है, उसी समय उस बांस का अस्तित्व विनष्ट हो जाता है । याने उसके फूल और फल उसीके विनाश के लिए हेतुभूत हो जाते हैं ।

गुरुकुलवास (शिक्षा का काल) सामान्यत: बारह वर्ष का ही रहता है । शिक्षाकाल में शिष्य ने अगर अहंकार, मद, क्रोध आदि दुर्गुणों का परिपोष किया, तो वही मानों उसकी शिक्षा का फूल और फल बन जाता है ।इतनी सारी शिक्षा के बावजूद अगर विद्यार्थी मानी, क्रोधी आदि हो जाय, तो ये दुर्गुण आगे जाकर उसके अपयश और विनाश का ही कारण बनेंगे । यही बोध इस गाथा से हमें प्राप्त होता है ।

गुरु तो सभी शिष्यों को समान रूप से विद्या प्रदान करता है । अविनयी शिष्य ने अगर वह शिक्षा अहंकार,

क्रोध आदि में परिणत हो जाय तो वह शिष्य के हानि का ही कारण होगा ।

****

स्वाध्याय – २

१) 'विनय' शब्द के दो अर्थ लिखिए । (एक वाक्य) (प्रस्तावना)
२) धर्मरूपी वृक्ष का मूल, फल और तना किसे कहा हैं ? (एक वाक्य) (गाथा १ अर्थ)
३) भगवती-आराधना ग्रंथ कौनसे आचार्य ने कौनसी भाषा में लिखा है ? (एक वाक्य) (गाथा २ भावार्थ)
४) धर्म का प्रवेशद्वार 'विनय' क्यों हैं ? (एक वाक्य) (गाथा २ भावार्थ)
५) विनय में कौनसे गुण निहित (included) हैं ? (एक वाक्य) (गाथा ३ अर्थ)
६) विनय के साथ अविनय भी क्यों जानना चाहिए ? (दो-तीन वाक्य) (गाथा ४ भावार्थ)
७) विनय को 'सरोवर' और गुणों को 'कमल' क्यों कहा हैं ? (दो-तीन वाक्य) (गाथा ५ भावार्थ)
८) 'विनय 'मूल' भी है और 'फल' भी है' - स्पष्ट कीजिए । (पाँच-छह वाक्य) (गाथा ६ भावार्थ)
९) अविनयी शिष्य में कौनसे दुर्गुण होते हैं ? (एक वाक्य) (गाथा ७ भावार्थ)
१०) विनयी और अविनयी शिष्य कौनसे बदलाव ला सकते हैं ? (एक वाक्य) (गाथा ७ भावार्थ)
११) उत्तराध्ययनसूत्र कौनसी भाषा में है ? उसके प्रथम अध्ययन का नाम क्या है ? (दो वाक्य) (गाथा ७ भावार्थ)
१२) गुरु से शिक्षा प्राप्त करने के लिए किस प्रकार वचनविनय करना चाहिए ? (तीन वाक्य) (गाथा ८ अर्थ)
१३) अविनयी शिष्य के लिए 'बांस' की उपमा क्यों प्रयुक्त की है ? (तीन-चार वाक्य) (गाथा ९ भावार्थ)

****

(३) सम्मत्त (सम्यक्त्व)

प्रस्तावना :

'सम्यक्त्व' (सम्मत्त) जैनधर्म की आधारशिला है । इसका दूसरा नाम 'सम्यक्‌दर्शन' अर्थात् 'सच्ची श्रद्धा' – इस प्रकार किया जाता है । सम्यक्‌दर्शन अथवा सच्ची श्रद्धा का अंग्रेजी अनुवाद सामान्यत:right faith अथवा right believe इस प्रकार किया जाता है । 'सम्यक्त्व' यह नाम 'सम्+अञ्च' क्रियापद (verb) से घटित हुआ है । इसमें पक्षपातरहित (impartial) और मध्यस्थ दृष्टि अभिप्रेत है । सम्यक्त्वी व्यक्ति किसी भी एक तरफ झुककर निर्णय नहीं लेता अथवा मत प्रदर्शन नहीं करता ।

जैन परंपरा में कहे हुए द्रव्य, तत्त्व, लोकस्वरूप आदि पर बिना पूछताछ, बिना परीक्षा या बिना जिज्ञासा खाली अंधविश्वास रखना 'सम्यक्त्व' या 'सम्यक् श्रद्धा' नहीं है । द्रव्य, तत्त्व, आचार आदि का प्राथमिक ज्ञान, 'शाब्दिक ज्ञान' (verbal knowledge) है । यह ज्ञान प्राप्त करना तो आवश्यक ही है । बाद में बुद्धि, तर्क, जिज्ञासा आदि से इस शब्दज्ञान की चिकित्सा करना आवश्यक है । इसी वजह से कहा जाता है कि 'पण्णा समिक्खए धम्मं' । (प्रज्ञा से धर्म की समीक्षा करें ।) इस परीक्षा से जब सभी शंकाएँ दूर होती है तब सच्चे अर्थ में सम्यक्त्व का उदय होता है । सम्यक्त्व के उदय से ज्ञान को भी अपने आप सम्यक्त्व प्राप्त हो जाता है । जिस प्रकार विनय धर्म का मूल भी हैऔर फल भी है उसी प्रकार सम्यक्त्व मोक्ष का मूल भी है और फल भी है । तीन अलग-अलग परिप्रेक्ष्य में सम्यक्त्व के तीन अर्थ हम बता सकते हैं –

१) व्यावहारिक दृष्टि से और बोलचाल की भाषा में 'सम्यक्त्व' याने सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे धर्म पर श्रद्धा ।

२) आध्यात्मिकता की दृष्टि से 'सम्यक्त्व' याने आत्मा का अस्तित्व मानना तथा आत्मा को अनंत शक्तियों से युक्त मानना ।

३) 'सम्यक्त्व' का अर्थ अभ्यासकों ने Enlightened worldview – इस पदावलि से भी स्पष्ट किया है ।

भावार्थ स्पष्टीकरण :

(१) छद्दव्व णव पयत्था ---

षड्द्रव्य : 'द्रव्य' का भाषांतर (substance, entity) अथवा (reality) इस प्रकार किया जाता है । पूरे लोक के सभी द्रव्य इस छह प्रकारों में बाटें जा सकते हैं । इसकी दूसरी तरह यह भी व्याख्या की गयी है कि, 'लोक षड्द्रयात्मक है' । लोक याने जगत् का यह विश्लेषण वैज्ञानिक दृष्टि से किया गया है । क्योंकि ये षड्द्रव्यrealities है । यह मानसिक (psychological) या नैतिक (ethical) विश्लेषण नहीं है ।

धर्म (medium of motion) गतिसहायक द्रव्य है । अधर्म (medium of rest) स्थितिसहायक द्रव्य है । आकाश (space) सभी द्रव्यों को अवकाश, जगह देनेवाला द्रव्य है । काल (time), जीव और अजीवों में पाये जानेवाले अवस्थांतरों का आधारभूत द्रव्य है । पुद्‌गल (matter, atom, molecule) वर्ण, रस, गंध, स्पर्श युक्त मूर्त अजीव द्रव्य है । जीव (living being, soul, self) चैतन्ययुक्त अमूर्त द्रव्य है । इनमें से पुद्‌गल के व्यतिरिक्त अन्य पाँच द्रव्य अरूपी एवं अमूर्त (non-material, incorporeal) हैं । पुद्‌गल रूपी एवं मूर्त (material, corporeal) है ।

अस्तिकाय : इन षड्द्रव्यों में से जो व्यापक (extensive and extended) द्रव्य हैं उन्हें अस्तिकाय कहते हैं । जैनों ने माना है कि काल छोडकर सभी पाँच द्रव्य व्यापक है । काल को एकरेषीय याने (linear) माना गया है । काल के सूक्ष्म भाग एक-दूसरे में मिश्रित नहीं होते । इसलिए कालद्रव्य अस्तिकाय नहीं है ।

नौ पदार्थ : जैन शास्त्र के अनुसार नौ तत्त्व (tenets) इस प्रकार हैं । जीव (आत्मा) (living being, soul,

self), अजीव (non-soul), पुण्य (merit), पाप (sin), आस्रव (inflow of karman in soul), संवर (stoppage of karman), निर्जरा (shedding of karman), बंध (bondage), मोक्ष (liberation, salvation) ये नौ पदार्थ (तत्त्व) हैं ।

नौ तत्त्वों के ऊपर अगर विचारणा करे तो ध्यान में आता है कि जीव और अजीवrealities है और उर्वरित सात तत्त्वों को ethical या spiritual कहा जा सकता है ।

पुण्य और पाप का समावेश आस्रव या बंध तत्त्व में हम कर सकते हैं । इसलिए तत्त्वों की गणना सात भी की जा सकती है ।

ऊपर वर्णन किये हुए षड्द्रव्य, नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय और सात तत्त्व इनका यथार्थ स्वरूप जिनदेवों ने कहा है । उसके ऊपर सच्ची श्रद्धा रखनेवाले को 'सम्यक्दृष्टी' कहते हैं ।

(२) कायव्वमिणकायव्वयत्ति ---

'भगवती आराधना' की इस गाथा में ज्ञान और सम्यक्त्व की एकरूपता बतायी है । हमारे जीवन में कई बार क्या करना है और क्या करना नहीं है इसके बारे में संदेह उत्पन्न होता है । ज्ञान के द्वारा समस्या का आकलन ठीक तरह से होता है । पक्षपातरहित दृष्टि के द्वारा क्या ग्रहण करना है और क्या छोडना है इसके बारे में प्रत्यक्ष कृति होती है । यद्यपि यहाँ परिहार याने त्याग का निर्देश है तथापि उसीमें उपादेय याने ग्राह्य भी अभिप्रेत है । ज्ञान और सम्यक्त्वसे जो शक्ति प्राप्त होती है उसे हम विवेक भी कह सकते हैं । इस गाथा में जिसे ज्ञान और सम्यक्त्व कहा है, वहीविवेक है ।

(३) लक्खिज्जइ सम्मत्तं ---

इस गाथा में पाँच गुणों को सम्यक्त्व के लक्षण या चिह्न कहे हैं । जिस व्यक्ति में ये चिह्न दिखायी देते हैं वह सम्यक्त्वी है । सम्यक्त्व की पहचान इन पाँच लक्षणों के द्वारा होती है । 'उपशम' का मतलब है भावनाओं का तीव्र उद्रेक न होना । 'संवेग' याने विरक्ति की दिशा से मन का प्रवाह बहना । सांसारिक विषयों के प्रति उदासीनता 'निर्वेद' है । दूसरे के प्रति दयाभाव 'अनुकंपा' है । खुद के याने आत्मा के अस्तित्व पर विश्वास रखना 'आस्तिक्य' है ।

(४) निस्संकिय निक्कंखिय ---

नि:शंका, नि:कांक्षा आदि आठ गुणों को सम्यक्त्व के अंग क्यों कहा है ? उचित मात्रा में ग्रहण किया हुआ पोषक आहार जिस प्रकार हाथ, पैर आदि अवयवों को निरोगी एवं सुदृढ रखता है उसी प्रकार ठीक तरह से ग्रहण किय हुआ सम्यक्त्व आठ अंगों को पुष्ट करता है । वे आठ अंग इस प्रकार हैं ।

१) नि:शंका : जिनप्रतिपादित द्रव्यों तथा तत्त्वों के बारे में शंकारहित होना, नि:शंका है । द्रव्य की संख्या छह ही है या कम-ज्यादा ? सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जिन थे या नहीं थे ? पृथ्वीकायिक, अप्कायिक आदि सचमुच चैतन्यमय है या नहीं ? इस प्रकार की शंकाओं से परे होना नि:शंका है ।

२) नि:कांक्षा : साधनामार्गी बनने पर ऐहिक और पारलौकिक विषयों की अभिलाषा नहीं करना । कांक्षा या अभिलाषा मन में होने पर साधक अपने मार्ग से दूर हो जाते है । सिद्धांत को भी छोड देते है ।

३) निर्विचिकित्सा : संदेह तक पहुँचानेवाली अतिचिकित्सा टालना, 'निर्विचिकित्सा' है । हर बार मन को आंदोलित करनेवाले विकल्प सामने उपस्थित होने लगे तो किसी एक निर्णय या नतीजे पर हम नहीं पहुँच सकते ।

४) अमूढदृष्टि : मूढता याने मोहयुक्त होना । जैनधर्म के तत्त्व और आचार समझने में और पालने में कठिन है । उनमें संयम और त्याग की प्रधानता है । तुलना से अन्यों के तत्त्व और आचारसुलभ एवं आकर्षक है ।इसलिए मोहयुक्त होकर, जिनतत्त्वों को छोडकर, आकर्षक धर्मों के प्रति झुकाव होना, 'मूढदृष्टि' है । इस प्रकार की दृष्टि से

बचना और स्वधर्म पर टिके रहना, ‘अमूढदृष्टि’ है ।

५) उपबृंहण : गुणीजनों की प्रशंसा से गुणों का परिवर्धन करना, ‘उपबृंहण’ है । हर एक व्यक्ति में गुण के साथ दोष भी पाये जाते हैं । दोषों की चर्चा करके, सबके सामने उनकी त्रुटियाँ न निकालना, ‘उपगूहन’कहा जाता है । प्रसंगवश उपबृंहण के लिए उपगूहन भी आवश्यक है ।

६) स्थिरीकरण : स्वीकृत श्रद्धा पर अटल रहना, ‘स्थिरीकरण’ है । नियम भले छोटा ही क्यों न हो, मन:पूर्वक स्वीकारने के बाद, किसी भी परिस्थिति में उसका दृढता से पालन करना, स्थिरीकरण का ही एक उदहरण है । ‘गंगा गये गंगादास, जमुना गये जमुनादास’, इस प्रकार की भाववृत्ति व्यवहार में भी हानिकारक होती है, तो अध्यात्म में कैसे फलदायी होगी ?

७) वात्सल्य : माता का अपत्य के प्रति जो भाव होता है, वही भाव हर प्राणिमात्र के प्रति रखना, ‘वात्सल्य’ है ।

८) प्रभावना : धर्म के प्रति खुद की आस्था होना तथा दूसरों की आस्था या रुचि बढाना, ‘प्रभावना’ है ।

(५) समत्तादिचारा ---

अतिचार का मतलब है transgression अर्थात् विहित मर्यादा का उल्लंघन । सम्यक्त्व अथवा सम्यग्दर्शन जैन तत्त्वज्ञान एवं आचार की आधारशिला है । इसलिए प्रस्तुत गाथा में निहित पाँच अतिचार व्रती श्रावक और साधु के लिए समान हैं, क्योंकि दोनों के लिए सम्यक्त्व साधारण धर्म है । इन पाँच में से शंका, कांक्षा और विचिकित्सा का स्वरूप, सम्यक्त्व के आठ अंग बतलाते समय पहले ही स्पष्ट हो गया है । जैसे कि नि:शंका सम्यक्त्व का अंग हैतो शंका या संदेह करना सम्यक्त्व का अतिचार है । अन्य दो अतिचारों के बारे में इसी तरह समझना चाहिए ।

‘परदिट्ठीण पसंसा’ - इसका मतलब है जिनकी दृष्टि सम्यक् नहीं है, जो माध्यस्थ भाव न रखकर संकुचित एवं एकांतिक मतप्रदर्शन करते हैं, उनकी प्रशंसा न करना ।

‘आयतन’ का अर्थ है ‘पात्र’ अथवा ‘योग्य’ । जो कुपात्र एवं अयोग्य व्यक्ति की दान आदि के द्वारा सेवा करता है, उसका यह आचरण उसके स्वयं के सम्यक्त्व में बाधा डाल सकता है । इसी वजह से ‘कुपात्रसेवा’ अतिचार है । आठ अंगों में सम्यक्त्व का सकारात्मक (positive) रूप कहा है । अतिचारों में सम्यक्त्व का नकारात्मक (negative) स्वरूप बताया है ।

(६) नाणं पगासयं ---

यह गाथा श्वेतांबर आचार्य वीरभद्रकृत आराधनापताका नामके प्रकीर्णक से चयनित की है । इस प्रकीर्णक में सामान्यत: सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप का विवेचन है । संलेखना या संथारा का विस्तृत वर्णन इसका प्रतिपाद्य है ।

इस गाथा का भावार्थ यह है कि व्यक्ति के द्वारा प्राप्त किया हुआ सभी प्रकार का ज्ञान मोक्षमार्ग का प्रकाशक होने में समर्थ नहीं होता । व्यक्ति के द्वारा आचरित सभी प्रकार का तप ‘शोधक’ याने आत्मा की आध्यात्मिकशुद्धि करने में समर्थ नहीं होता । उसी तरह सभी प्रकार का संयम मेरी आत्मा को दोष या दुष्प्रवृत्ति से रोकने में समर्थ नहीं होता ।

ऐहिक या लौकिक पदवियों से मुझे आध्यात्मिक मार्गदर्शन मिलने की संभावना नहीं है । यहाँ ज्ञान का मतलब है - षड्द्रव्यों एवं नवतत्त्वों का ज्ञान । यह ज्ञान भी केवल शाब्दिक (verbal) न होकर सम्यक्त्व के सहित ही होना अपेक्षित है ।

सेहत अच्छी रखने के लिए अगरdiet या fast किया तो अच्छी सेहत प्राप्त होगी लेकिन इस तप से आध्यात्मिक शुद्धि नहीं होंगी । खाने के लिए कुछ नहीं मिला तो यह अनशन धार्मिक दृष्टि से कतई ‘तप’ की कोटि में नहीं आ

सकता । सम्यक्त्व सहित तप ही सच्चे अर्थ में आत्मिक शुद्धि प्रदान करता है ।

खुद की धार्मिकता दिखाने के लिए, प्रशंसा पाने के लिए या अन्य किसी कारण बलात् इंद्रियसंयम किया तो वह संयम न होकर दमन ही होता है । सम्यक्त्वसहित न होने के कारण इस प्रकार का दमन आत्मा का गोपन करनेमें समर्थ नहीं होता ।

सारांश यह है कि ज्ञान, तप और संयम की सार्थकता 'सम्यक्त्व' के बिना नहीं होती ।

(७) सम्मत्तसलिलपवहो ---

आचार्य कुंदकुंद दिगंबर परंपरा के एक प्रभावशाली प्राचीन आचार्य थे । उनकी विशाल ग्रंथसंपदा में 'अष्टपाहुड' नाम के ग्रंथ का स्थान अनन्यसाधारण है । 'पाहुड' (प्राभृत) का मतलब है उपहार, संबल अथवा पाथेय । अध्यात्मार्ग पर अग्रेसर, साधक को साथ में दिया हुआ यह भाता है । इन आठ पाहुडों में पहला पाहुड 'दर्शनपाहुड' है । सम्यग्दर्शन का स्वरूप बताना इस पाहुड का प्रतिपाद्य है ।

प्रस्तुत गाथा में सम्यक्त्व को पानी के नित्य प्रवाहित धारा की उपमा दी है । यह धारा दिखायी नहीं देती क्योंकि यह हृदय में प्रवाहित होती है । प्रवाहित जलधारा के सामने बालू का बाँध नहीं टिक सकता । उसी प्रकार सम्यक्त्व के प्रवाह के सामने कर्मरूपी बाँध या आवरण तत्काल विनष्ट हो जाता है ।

किंबहुना हम यह कह सकते हैं कि सम्यक्त्वी व्यक्ति का कर्मबंध मूलत: गाढा न होकर बालू के बाँध के समान हलका ही होता है । बांधते समय ही बंध हलका होना सम्यक्त्व की खासियत है ।

(८) जह मूलाओ खंधो ---

इस गाथा में वृक्ष का रूपक निहित है । मोक्षमार्ग को वृक्ष कहा है । मोक्षमार्ग दर्शन-ज्ञान- चारित्रात्मक है। सम्यक्त्व जड या मूल के समान है । ज्ञान वृक्ष के स्कंध या तने के समान है । चारित्र शाखा, प्रशाखा एवं पत्ते, फूल समान है । मोक्ष की तुलना हमेशा वृक्ष के फल से की जाती है । मूल याने सम्यक्त्व जितना दृढ होगा उतना ही वृक्ष एवं उसका फल भी अच्छा होगा ।

इस गाथा में प्रयुक्त 'जिणदंसण' शब्द का अर्थ है - जिनेंद्रकथित शब्दों पर सच्ची श्रद्धा ।

(९) सम्मत्तरयणभट्ठा ---

यह गाथा भी दर्शनपाहुड से ही उद्धृत की है । इसमें सम्यक्त्व को 'रत्न' कहा है । अगर व्यक्ति ने एक बार पाकर बाद में सम्यक्त्वरूपी रत्न गँवाया, तो उसकी क्या अवस्था होती है इसका वर्णन इस गाथा में किया है । गाथा की दूसरी पंक्ति में अभ्यास का याने exercise और practice का महत्त्व अधोरेखित किया है । गायनकला में माहिर होने के लिए रियाज की आवश्यकता होती है । विज्ञान के सिद्धांत प्रस्थापित करने के लिए वारंवार experiments करने पडते हैं । उसी प्रकार श्रद्धा दृढ रखने के लिए बारबार हर तरह से उसपर चिंतन, मनन आदि रूप से भावन करना आवश्यक है । लक्ष पर टिके रहने के लिए की हुई इस भावना को 'आराधना' कहा है । उचित आराधना के अभाव में व्यक्ति को सांसरिक विषयों में गुम हो जाने का भय कायम रहता है । यही विचार 'भमंति तत्थेव' इस पदावलि से सूचित किया है । सम्यक्त्व की आराधना से ही साधक आगे बढ सकता है ।

(१०) दंसणभट्ठो भट्ठो ---

प्रस्तुत गाथा में दर्शनभ्रष्ट और चारित्रभ्रष्ट की तुलना की है । चारित्रभ्रष्टता याने किसी वजह से आचरण में हुई चूक या भूल । योग्य पश्चात्ताप एवं प्रायश्चित्त से आचरण की भूल हम सुधर सकते हैं । लेकिन दर्शनभ्रष्टता याने श्रद्धा से विचलित होना । एक बार आदमी श्रद्धा से डाँवाडोल हुआ तो उसके आचरण की आधारशिला ही विनष्ट होती है

। सम्यक्त्व से दूर जाने पर पुन: मार्ग पर आना बहुत ही असंभव है । सम्यक्त्वभ्रष्टता के बारे में प्रायश्चित्त या पश्चात्ताप से काम नहीं चलता । इसी वजह से तुलनात्मक दृष्टि से बताया है कि आचरणभ्रष्टता से दर्शनभ्रष्टता बहुत ही अधिक हानिकर है ।

चारित्रभ्रष्टता की पुष्टि करना इस गाथा का मंतव्य नहीं है । सम्यक्त्व की सर्वोपरि महत्त्व बताना, इस गाथा का तात्पर्य है ।

यही गाथा 'भगवती आराधना' एवं 'अष्टपाहुड' में भी पायी जाती है ।

****

स्वाध्याय-३

१) षड्द्रव्यों के नाम एवं संक्षिप्त लक्षण लिखिए । (गाथा १ भावार्थ)
२) अस्तिकाय का मतलब एक वाक्य में समझाओ । (गाथा १ भावार्थ)
३) कालद्रव्य अस्तिकाय क्यों नहीं है ? (दो-तीन वाक्य) (गाथा १ भावार्थ)
४) नौ पदार्थों के नाम लिखिए । (गाथा १ भावार्थ)
५) 'नौ पदार्थ' और 'सात तत्त्व' दोनों एक ही है - स्पष्ट कीजिए । (दो वाक्य) (गाथा १ भावार्थ)
६) 'सम्यग्दृष्टी जीव' किसे कहा हैं ? (एक वाक्य) (गाथा १ अर्थ)
७) 'उपशम', 'संवेग', 'निर्वेद', 'अनुकंपा' और 'आस्तिक्य' इन शब्दों के संक्षिप्त अर्थ बताइए । (गाथा ३ भावार्थ)
८) सम्यक्त्व के आठ अंगों के नाम बताइए । (गाथा ४ अर्थ)
(टिप्पण : सम्यक्त्व के आठ अंगों के लक्षण विद्यार्थी ध्यानपूर्वक पढें । 'रिक्तस्थान की पूर्ति' अथवा 'उचित जोड लगाओ' इस तरह के प्रश्नों में ये आठ अंग पूछे जा सकते हैं ।)
९) परदृष्टिप्रशंसा का क्या अर्थ है ? (एक-दो वाक्य) (गाथा ५ भावार्थ)
१०) 'अनायतनसेवना' का अर्थ बताइए । (दो वाक्य) (गाथा ५ भावार्थ)
११) सम्यक्त्व के पाँच अतिचारों के नाम लिखिए । (गाथा ५ अर्थ)
१२) ज्ञान, संयम और तप की सार्थकता कब होती है ? (गाथा ६ भावार्थ अंतिम वाक्य)
१३) 'पाहुड' शब्द का अर्थ क्या है ? (एक वाक्य) (गाथा ७ भावार्थ)
१४) 'अष्टपाहुड' ग्रंथ कौनसे आचार्य ने लिखा है ? (गाथा ७ भावार्थ)
१५) सम्यक्त्वी व्यक्ति के द्वारा किये जानेवाले कर्मबंध को कौनसी उपमा दी है ? (एक वाक्य) (गाथा ७ अर्थ)
१६) सम्यक्त्व से भ्रष्ट मनुष्य की क्या गति होती है ? (एक वाक्य) (गाथा ९ अर्थ)
१७) 'दंसणभट्ठो भट्ठो' इस गाथा में चारित्रभ्रष्टता और दर्शनभ्रष्टता के बारे में क्या कहा है । (पाँच-छह वाक्य) (गाथा १० भावार्थ)

****

४) नाण (ज्ञान)

प्रस्तावना :

ज्ञान की मीमांसा एवं चर्चा (Epistemology) यह जैन शास्त्र का प्रमुख विषय है । धर्म एवं तत्त्वज्ञान मनुष्यकल्पित होने के कारण और मनुष्यों के व्यापारों में ज्ञान का प्राधान्य होने के कारण कई तत्त्वज्ञों ने अपनी अपनी विचारप्रणाली में ज्ञान की चर्चा अवश्य की है । जैन शास्त्र में ज्ञान के विविध प्रकारों के द्वारा ज्ञानचर्चा का प्रारंभ होता है ।

भावार्थ स्पष्टीकरण :

(१) पढमं नाणं तओ दया ---

दशवैकालिक की यह पदावलि वारंवार उद्धृत की जाती है । यहाँ प्रयुक्त 'दया' शब्द में अनेक मुद्दों का समावेश है । धार्मिक आचरण, अहिंसा, परोपकार, दान आदि कई बातें 'दया' शब्दद्वारा निर्दिष्ट हो सकती है । जो भी व्यक्ति 'मुनि' या 'साधु' शब्द से वाच्य है उनको चाहिए कि वे प्रथम ज्ञान प्राप्त करें और बाद में उसके अनुसार आचरण करें ।

गाथा की दूसरी पंक्ति में श्रोता से एक प्रश्न पूछा है और उसका उत्तर उसी प्रश्न में निहित है । ज्ञान से क्या श्रेयस (हितकर) है और क्या अश्रेय अर्थात् पाप है, इसका बोध होता है । पुण्य और पाप का सही मतलब जाननेपर ही विवेकपूर्वक आचरण हो सकता है । यह ज्ञान अर्थात् विवेक न हो तो अज्ञानी व्यक्ति श्रेयस की ओर प्रवृत्ति और पाप से निवृत्ति कैसे करेगा ?

अपने कुमारवयीन पुत्र को समझाने के लिए आचार्यश्री ने इतनी सुलभ भाषा का प्रयोग किया है ।

(२) तत्थ पंचविहं नाणं ---

जानने की क्रियाद्वारा जो प्राप्त होता है वह 'ज्ञान' है । ज्ञान के पाँच प्रकार बताकर उसका स्वरूप स्पष्ट किया जाता है । उत्तराध्ययनसूत्र की इस गाथा में ज्ञान का पहला प्रकार श्रुतज्ञान (verbal knowledge) बताया है ।

सुनकर या पढकर जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है उसे 'श्रुतज्ञान' कहा जाता है । जैन शास्त्र में आगमों के ज्ञान (scriptural knowledge) को भी 'श्रुतज्ञान' कहा है । सभी प्रकार का informative knowledge इस category में आता है ।

अभिनिबोधिक ज्ञान का दूसरा नाम 'मतिज्ञान' भी है । पाँच इंद्रियाँ तथा मन के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है उसे 'मतिज्ञान' (sensory knowledge) कहते हैं । यहाँ 'मति' शब्द बुद्धिवाचक नहीं है, इंद्रियवाचक है । पाँचों इंद्रियोंद्वारा ज्ञान प्राप्त होने के लिए 'मन' की आवश्यकता है तथा मन के द्वारा प्राप्त किये हुए सुख-दुःख आदि के ज्ञान को भी मतिज्ञान ही कहते हैं । स्मरण (memory) और चिंतन (reflection) आदि व्यापार मतिज्ञान में ही अंतर्भूत किये हैं ।

मर्यादित क्षेत्र में होनेवाले रूपी (material and corporeal) पदार्थों के ज्ञान को 'अवधिज्ञान' (clairvoyance, visual intution) कहते हैं । जैन शास्त्र के अनुसार यह ज्ञान साक्षात् आत्मा (individual being, soul) को होता है । इस ज्ञान के लिए इंद्रियाँ और मन की आवश्यकता नहीं होती । अवधिज्ञान का स्वामी एक जगह में स्थित होनेपर भी दूरवर्ती क्षेत्र में होनेवाले वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर सकता है ।

दूसरों के मनोगत भावों को जानना-मन:पर्यायज्ञान (telepathy, mental intution) है । जैन शास्त्र के अनुसार यह ज्ञान भी साक्षात् आत्मा के द्वारा ही होता है ।

भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों काल में त्रैलोक्य में होनेवाले सभी रूपी और अरूपी पदार्थों का ज्ञान 'केवलज्ञान' (omniscience, perfect knowledge) है । केवलज्ञानी व्यक्ति को ही जैन शास्त्र में 'सर्वज्ञ', 'सर्वदर्शी' कहते हैं ।

केवलज्ञान की प्राप्ति के अनंतर व्यक्ति अवश्य मोक्षगामी होता हैं ।

(३) एयं पंचविहं नाणं ---

पाँचों प्रकारों के ज्ञानों में वस्तु के द्रव्य (substance) गुण (qualities) और पर्यायों (modes, modifications, variations) का ज्ञान होता है । केवलज्ञान में द्रव्य के सभी गुण और सभी पर्यायों का समग्र ज्ञान प्राप्त होता है । बाकी चार ज्ञानों में यह ज्ञान आंशिक होता है ।

उदाहरणार्थ, 'सुवर्ण' एक पदार्थ याने (substance) है । चमकीलापन, घनता आदि उसके गुण हैं । विविध प्रकार के अलंकार उस सोने के ही विविध पर्याय हैं । जैन शास्त्र के अनुसार धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव ये छह 'द्रव्य' हैं । ये सभी द्रव्य हमेशा गुण और पर्यायसहित होते हैं । उनसे वियुक्त नहीं होते ।

ऊपर सुवर्ण का जो उदाहरण दिया है वह वस्तुत: पुद्गल द्रव्य का एक पर्याय ही है ।

(४) जो पोग्गलदव्वाणं ---

'समयसार' यह ग्रंथ आचार्य कुंदकुंद का एक प्रसिद्ध ग्रंथ है । 'समय' शब्द के विविध अर्थ हो सकते हैं लेकिन यहाँ 'समय' शब्द आत्मा अथवा सिद्धांत इन अर्थों से लिया गया है । यह ग्रंथ पूरा का पूरा सैद्धांतिक एवं आध्यात्मिक (spiritual) है ।

इस गाथा में आचार्य कहते हैं कि हमारे आसपास जो भी मूर्त पदार्थ दिखायी देते हैं वे सभी 'पुद्गल' द्रव्य के पर्याय ही हैं । हीरा, सोना, पन्ना, पत्थर, मिट्टी सभी पुद्गलमय हैं । उनपर हम हमारे मोहवश मूल्यवान आदि गुणधर्म थोपते हैं । उनके प्रति लोभ या द्वेष रखते हैं । इन कषायों के कारण हमें ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के बंध होते हैं । ज्ञानी व्यक्ति इन सबका पुद्गल रूप जानकर रागी या द्वेषी नहीं बनता । इस प्रकार मूल स्वरूप का ज्ञान हमें रागी-द्वेषी बनने से, कर्मबंधन से दूर रखता है ।

(५) जीवाजीवविहत्ती जो जाणइ ---

इस गाथा में सम्यक्ज्ञानी का स्वरूप अलग तरह से स्पष्ट किया है । जीव और अजीव इनमें जो भेद है वह ठीक तरह से जो जानता है, उसे 'सम्यक्ज्ञानी' कहा है । षड्द्रव्य में से जीवद्रव्य ज्ञानचेतनामय है । जीव में ही ज्ञान, दर्शन आदि अनंत शक्तियाँ है । बाकी सब द्रव्य अचेतन है । उनमें सोच-विचार आदि की शक्ति भी नहीं है । जीवद्रव्य के ही बंध और मोक्ष संभव है । अजीव के संपर्क में आनेपर भी पुरुषार्थयुक्त होकर व्यक्ति मोक्षगामी हो सकता है । जीव की अन्य द्रव्यों से विशेषत: जो ठीक तरह से जानता है तथा इस ज्ञान के आधार से रागादि दोषों से रहितहोता है, वह मोक्षमार्गी होता है ।

(६) सुद्धणया पुण णाणं ---

जिसकी दृष्टि मिथ्या है, वह कितना भी ज्ञान प्राप्त करे, सब अज्ञान में ही परिणमित होता है । ज्ञान की सच्ची आराधना के लिए दृष्टि सम्यक् होना अपेक्षित है । इसलिए मिथ्यादृष्टि सच्चे ज्ञान का और क्रम से मोक्षमार्गका भी आराधक नहीं हो सकता ।

(७) तवरहियं जं णाणं ---

व्यक्ति के पास शाब्दिक ज्ञान का भंडार है लेकिन बाह्य और अंतरंग तपों का अभाव है, तो वह ज्ञान कृतार्थ नहीं होता । दूसरा आदमी बहुत सारे बाह्यतप करता है लेकिन ज्ञान और विवेकपूर्वक नहीं करता । मतलब यहहै कि तप और ज्ञान एकदूसरे के पूरक है । एकदूसरे के बिना अधूरे भी है । इनकी स्थिति 'अंध-पंगु-न्याय' के समान

है । दोनों एकदूसरे से अच्छी तरह जुडे, तब ही निर्वाण तक पहुँच सकते हैं ।

(८) उवसमइ किण्हसप्पो ---

इस गाथा में हृदय को कृष्णसर्प की उपमा दी है । सर्पों की सब जातियों में कृष्णसर्प सबसे जहरीला और प्राणघतक होता है । साप कितना भी जहरीला हो, मंत्रपूर्वक विधि का जानकार उस सर्प को तथा सर्पविष को शांत कर सकता है । हृदय को कृष्णसर्प कहने का कारण यह है कि हृदय में याने अंत:करण में कषाय एवं विकार भरे ही रहते हैं । उनपर अगर उपाय न करे तो वह ऐहिक और पारलौकिक दोनों दृष्टि से घातक हो सकते हैं । शुद्धज्ञान का उचित मात्रा में किया हुआ प्रयोग, हृदयरूपी कृष्णसर्प को शांत कर सकता है । विकारों पर काबू रखने की यह ताकद ज्ञान की विशेषता है । यह विशेषता इस गाथा के द्वारा अधोरेखित की है ।

(९) णाणमयविमल ---

इस गाथा में ज्ञान को शुद्ध और शीतल जल की उपमा दी है । 'औषधं जाह्नवी तोयं ।' (गंगा का शुद्ध पानी औषध है ।) इस सुवचन में जिस प्रकार गंगाजल को औषधसमान माना है उसी प्रकार ज्ञानरूपी एक जल, जरा, मरण, वेदना तथा दाह आदि विविध रोगों पर इलाजस्वरूप होता है । व्याधियाँ चाहे कितने भी प्रकार की हो, यहाँ ज्ञानरूप औषध एक ही है । ज्ञानरूप जल प्राशन करने की एक शर्त है, वह आदमी भव्य याने मुमुक्षु होना चाहिए और उसने श्रद्धापूर्वक जल पीना चाहिए । उसी प्रकार जैनशास्त्र के अनुसार ज्ञान भी श्रद्धासहित होना चाहिए ।

आश्चर्य की बात यह है कि औषध लेकर आदमी निरोगी तो हो जाता है लेकिन वैद्य नहीं बनता । ज्ञानजल के प्राशन से व्यक्ति खुद सिद्ध भी बन सकता है ।

भावपाहुड की इस गाथा में अर्थों की विविध छटाएँ आचार्यश्री ने पूरी तरह भरी हुई है ।

(१०) मायावेल्लि असेसा ---

इस गाथा में मोह को महावृक्ष की एवं माया (ढोंग, कपट) को लता की उपमा दी है । इस उपमा से मोह और माया का अलगअलग स्वभाव और प्रभाव व्यक्त किया है । मायारूपी लता मोहवृक्षपर ही आरूढ होती है । उस लता पर विविध, आकर्षक पुष्प भी होते हैं । ये फूल नि:संशय, घातक है - यह वस्तुस्थिति ज्ञानी जानता है । ज्ञानरूपी शस्त्र से मायावेल्ली काट भी डाल सकता है । अब बात यह है कि वही शस्त्र मोहवृक्षपर चलता है या नहीं ? मोह तो कर्मों का राजा है । उसके बंध अतीव दृढ है । यहाँ ज्ञानरूपी शस्त्र परिणामकारक नहीं होता । दृढशील पालन याने चारित्र की आराधना ही मोहपर विजय पा सकती है ।

इस गाथा में ज्ञानरूपी, शस्त्र की मर्यादा कथन करने का मुख्य उद्देश नहीं है। 'ज्ञानरूपी शस्त्र, मायापर काबू कर सकता है', इस मुद्दे पर यहाँ विवरण है ।

****

स्वाध्याय - ४

१) 'पढमं नाणं तओ दया' इस सूत्र का मतलब तीन-चार वाक्यों में समझाइए । (गाथा १ भावार्थ)
२) ज्ञान के पाँच प्रकारों के नाम लिखिए । (गाथा २ अर्थ)
३) द्रव्य, गुण और पर्याय ये संज्ञाएँ सुवर्ण के उदाहरण से स्पष्ट कीजिए । (चार-पाँच वाक्य) (गाथा ३ भावार्थ)
४) सच्चा ज्ञानी कर्मबंध से कैसे बचता हैं ? (पाँच-छह वाक्य) (गाथा ४ भावार्थ)
५) मिथ्यादृष्टी ज्ञान का आराधक क्यों नहीं होता ? (दो वाक्य) (गाथा ६ भावार्थ)
६) 'तम्हा णाण-तवेणं संजुत्तो लहइ निव्वाणं' - स्पष्ट कीजिए । (चार-पाँच वाक्य) (गाथा ७ भावार्थ)
७) हृदयरूपी कृष्णसर्प किस प्रकार शांत किया जा सकता है ? (तीन-चार वाक्य) (गाथा ८ भावार्थ)

८) जरा–मरण आदि व्याधियाँ कौनसे और किस प्रकार के जल से दूर हो जाती है ? (दो वाक्य) (गाथा ९ भावार्थ)

९) मायावेल्लि किसपर आरूढ होती है ? किस शस्त्र से काँटी जा सकती है ? (दो वाक्य) (गाथा १० भावार्थ)

****

(५) चारित्त (चारित्र)

(सूचना : दूसरी और तीसरी गाथा में दियेहुए पाँच प्रकारके चारित्र के नाम ध्यान में रखने के लिए कठिन है । इसलिए शिक्षक ये दो गाथाएँ न पढाएँ । उसी प्रकार गाथा क्र. आठ और नौ पर भी प्रश्न नहीं पूछा जायेगा ।)

प्रस्तावना :

जैनधर्म में त्रिरत्न संज्ञा प्रसिद्ध है । वे हैं - सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र । जैन परिभाषा में 'चारित्र' शब्द 'चारित्र्य' नहीं लिखा जाता क्योंकि चारित्र्य का मतलब है character जो प्रमुखत: शीलवाचक है । चारित्र शब्द की अर्थव्याप्ति इससे जादा है । मन, वचन और काया के सभी आचार, विचार, वर्तन 'चारित्र' शब्द में अंतर्भूत है । इसलिए सम्यक्चारित्र का अंग्रेजी अनुवाद right conduct किया जाता है ।

भावार्थ स्पष्टीकरण :

(१) पंच समिईओ ---

प्रस्तुत गाथा में आठ बातों को प्रवचन की माताएँ कहा है । माता जिस प्रकार अच्छे संस्कारों के द्वारा बालक को दुनियाँ में व्यवहारयोग्य बनाती है, उसी प्रकार पाँच समितियाँ और तीन गुप्तियाँ साधु को चारित्रसंपन्नबनाती है ।

(अ) पाँच समिति (Fivefold regulation of activities) :

सम्यक् प्रवृत्ति अर्थात् अच्छा आचरण 'समिति' है । समितियाँ पाँच हैं ।

१) ईर्या-समिति (carefullness in walking) **:** अच्छी तरह से देखभालपूर्वक चलना 'ईर्या-समिति' है ।

२) भाषा-समिति (carefullness in speech) **:** सत्य, हितकारी, परिमित और संदेहरहित बोलना, 'भाषा-समिति' है ।

३) एषणा-समिति (carefullness in food) **:** एषणा-समिति का मुख्य अर्थ भोजन का विवेक है । तथापि शय्या, वस्त्र, पात्र आदि के बारे में जागरूक रहना भी 'एषणा-समिति' है ।

४) आदान-निक्षेप-समिति (carefullness in lifting and laying down) **:** वस्तुओं को लेने का और रखने का विवेक, 'आदान-निक्षेप-समिति' है ।

५) उत्सर्ग-समिति (carefullness in depositing waste products) **:** मल-मूत्र, थूँक आदि का उचित स्थान पर, सावधानीपूर्वक विसर्जन करना, 'उत्सर्ग-समिति' है ।

समितियों का पालन करना याने पर्यावरण की रक्षा करना है । इसका पालन करने से घर, परिसर, राष्ट्र स्वच्छ और सुंदर रहेगा ।

(ब) तीन गुप्ति (Threefold restraints of activites) :

खुद की यथेच्छ प्रवृत्तियोंपर विवेकपूर्वक रोक लगाना 'गुप्ति' है ।

१) काय-गुप्ति (control of bodily activities) **:** शारीरिक व्यापार का नियमन करना 'कायगुप्ति' है ।

२) वचन-गुप्ति (control of speech activities) **:** बोलने के प्रत्येक प्रसंग पर या तो वचन का नियमन करना या मौन धारण करना 'वचन-गुप्ति' है ।

३) मन-गुप्ति (control of mental activities) **:** बुरे विचारों का त्याग करना और अच्छे विचारों का सेवन करना 'मनोगुप्ति' है ।

जैनधर्म में छोटी-छोटी प्रवृत्तियोंपर बडी गहराई से ध्यान दिया है । चलने, खाने, बोलने, सोचने में भीअहिंसा

के आचरण की शिक्षा दी है । इसलिए समिति तथा गुप्तियों का पालन करना, धर्म का पालन ही है ।

(४) णाणस्स दंसणस्स य सारो ---

ज्ञान और दर्शन का रूपांतर अगर चारित्रपालन में नहीं हुआ तो ये दोनों रत्न सार्थक (meaningful) नहीं होते । इसी वजह से 'यथाख्यात' याने संपूर्ण चारित्रपालन को ज्ञान और दर्शन का सार कहा है । लेकिन आचरण कापालन भी अपने आप में ध्येयरूप नहीं है । अंतिम साध्य तो निर्वाणप्राप्ति ही है । आचरण से जब निर्वाणप्राप्ति का प्रयत्न होता है तभी वह सार्थक होता है ।

(५,६,७) प्राचीन जैन ग्रंथों में, जैनशास्त्र के आधारभूत स्कंध एवं स्तंभ चार बताएँ गये हैं । ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप इन चारों को चतुर्विध आराधना कहा है । जैन परंपरा में जब 'त्रिरत्नों' की संकल्पना दृढमूल हुई तब 'तप' की गणना 'चारित्र' के अंतर्गत की जाने लगी । इस प्रकार आराधना के तीन स्तंभ निर्दिष्ट होने लगे । कुछ आचार्यों ने चार आराधनाओं का संक्षेप दो में किया है । ज्ञान का अंतर्भाव दर्शन में किया तथा तप का अंतर्भाव चरण (चारित्र) में किया । भगवती आराधना ग्रंथ ने चारित्रसाधना को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया । ज्ञान, दर्शन और तप का अंतर्भाव इस ग्रंथ में चारित्र में ही किया गया ।

इस प्रकार आराधना एक है, दो है, तीन है और चार भी है ।

१०) नाणेण जाणई भावे ---

उत्तराध्ययनसूत्र की इस गाथा में चार प्रकार की आराधना अभिप्रेत है । हर एक आराधना का कार्यक्षेत्र भी निर्दिष्ट किया है । ज्ञान के द्वारा ही व्यक्ति षड्द्रव्य एवं नौ तत्त्वों को अच्छी तरह जानता है । षड्द्रव्य एवं नौ तत्त्व realities है इसलिए उन्हें 'भाव' कहा है । श्रद्धा (सम्यक्त्व) के पहले का ज्ञान केवल शाब्दिक ज्ञान (verbal knowledge) होता है । सम्यक्दर्शन से ज्ञान को भी सम्यक्त्व प्राप्त होता है । चारित्र में मुख्यत: गुप्ति और समितियों का अंतर्भाव होता है । इसलिए चारित्र का कार्य सभी प्रवृत्तियों पर रोक लगाना है । आत्मा की उत्तरोत्तर विशुद्धि करना, तप का प्रमुख प्रयोजन है । इस प्रकार ज्ञान से जानने का, दर्शन से श्रद्धा रखने का, चारित्र से संयमन करनेका और तप से शुद्धि का कार्य होता है । इस प्रकार ये चारों मोक्षप्राप्ति में सहायक होते हैं ।

११) नाणं च दंसणं चेव ---

हमने पढा ही है कि, 'जीवो उवओग लक्खणो' अर्थात् उपयोग याने consciousness यह जीव का अनन्यसाधारण (unique) लक्षण है । जीव एक द्रव्य है । हर द्रव्य के गुण और पर्याय होते हैं । ज्ञान आत्मा का प्रमुख गुण है । दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य आत्मा के कुछ भाव या पर्याय (modes, modifications) है । जीव के स्वरूप पर अधिक प्रकाश पडने के लिए, उसका गुणपर्याय सहित लक्षण देना उत्तराध्ययन ने आवश्यक समझा होगा । इसलिए यहाँ ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग इन छहों का निर्देश है ।

****

स्वाध्याय-५

१) कौनसी आठ बातों को चारित्राराधना कहा है ? (एक वाक्य) (गाथा १ भावार्थ)

२) आठ प्रवचनमाताएँ कौनसी है और क्यों ? (दो वाक्य) (गाथा १ भावार्थ)

३) यथाख्यात चारित्र किसका सार है और निर्वाण किसका सार है ? (दो वाक्य) (गाथा ४)

४) 'आराधना एक, दो, तीन तथा चार है' - स्पष्ट कीजिए । (पाँच-छह वाक्य) (गाथा ५,६,७ भावार्थ)

५) जीव के कौनसे छह लक्षण उत्तराध्ययन में निर्दिष्ट है ? (एक वाक्य) (गाथा ११ अर्थ)

****

(६) अप्पा (आत्मा)

प्रस्तावना :

भारतवर्ष में तत्त्वज्ञान की दो परंपराएँ दिखाई देती है । तत्त्वज्ञान की परंपरा या विशिष्ट धारा को दर्शन कहते हैं । दर्शनशास्त्र के अनुसार भारत में दो प्रकार के दर्शन हैं, आत्मवादी और अनात्मवादी । जैन, बौद्ध एवं चार्वाक दर्शनों को सामान्यत: नास्तिक दर्शन कहने की प्रथा है । फिर भी उसमें जैन दर्शन पूर्णतया आत्मवादी है । बौद्ध एवंचार्वाक दर्शन अनात्मवादी है ।

आत्मवादी दर्शनों का यह कर्तव्य होता है कि आत्मा का स्वरूप सिद्ध एवं स्पष्ट करें । जैन आगमों में 'राजप्रश्नीय' नाम के उपांग में इस प्रश्न की विस्तार से चर्चा की गयी है कि 'आत्मा और शरीर भिन्न है या एक है' । यह वार्तालाप राजा प्रदेशी और पार्श्वनाथ शिष्य केशीकुमार श्रमण के बीच में हुआ । केशीकुमार श्रमण ने अंतिमत: जीव का याने आत्मा का अस्तित्व सिद्ध किया ।

जैनशास्त्र स्पष्टत: मोक्षलक्षी है । बंध और मोक्ष दोनों आत्मा के ही होते हैं । इसलिए आत्मस्वरूप का चिंतन एवं वर्णन जैनग्रंथों का प्रधान विषय रहा है ।

भावार्थ स्पष्टीकरण :

(१) उत्तम गुणाण धामं ---

प्रस्तुत गाथा में जीव अर्थात् आत्मा का निश्चयनय के अनुसार वर्णन किया है । यहाँ विशुद्ध, सर्वोत्कृष्ट अवस्थाप्राप्त आत्मा का ही वर्णन है । अन्यथा व्यवहारनय से जीव केवल उत्तम गुणों का आश्रय ही कैसे हो सकता है ? व्यावहारिक दृष्टि से जीव में सद्‌गुण और दुर्गुण दोनों भी पाये जाते हैं ।

निश्चयनय की दृष्टि से यहाँ जीव को 'सब द्रव्यों में उत्तम द्रव्य' कहा है । अन्यथा षड्‌द्रव्यों में हम तरतम भाव नहीं कर सकते । इसी भाव से जीव को 'सब तत्त्वों में उत्तम तत्त्व' कहा है ।

जीव की श्रेष्ठता बताने का एक और भी कारण है । सभी द्रव्य और सभी तत्त्वों में, जानने की शक्तिवाला तत्त्व, केवल जीव ही है । अगर किसी के द्वारा जाने ही नहीं गये तो, द्रव्यों और तत्त्वों की सार्थकता ही क्या रहेगी ? इसी अर्थ से जीव को 'उत्तम' कहा है ।

(२) अरसमरूवमगंधं ---

प्रस्तुत गाथा में जीव का सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार का वर्णन पाया जाता है । 'चेतनागुण से समृद्ध होना'- यह जीव का सकारात्मक लक्षण है । बाकी सब लक्षण अभावात्मक है । रस, रूप, गंध, आकृति, लिंग एवं संस्थान आदि सब गुण पुद्‌गल में पाये जाते हैं । आत्मा पुद्‌गलमय नहीं है । इसलिए पुद्‌गल के इन गुणों से वह रहित है ।

(३) जीवा हवंति तिविहा ---

आत्मा की अंतर्मुखता तथा बहिर्मुखता की दृष्टि से यहाँ जीवों का वर्गीकरण किया है । इसलिए हम उसे आध्यात्मिक वर्गीकरण कह सकते हैं । कुछ जीवों की प्रवृत्तियाँ बहिर्मुख होती है । वस्तु और व्यक्तियों का बाह्य रूप देखकर इनका मन झट से आकृष्ट होता है । ऊपर के भाव देखकर ये प्रतिक्रियाएँ भी देते हैं । इन व्यक्तियों को हम बहिरात्मा कह सकते हैं ।

दूसरे प्रकार के व्यक्ति अंतर्मुख होते हैं । ऊपर के दिखावे की ओर आकृष्ट नहीं होते । किसी भी घटना के कार्य-कारण भाव पर चिंतन करते हैं । आत्मा में होनेवाली विविध शक्तियों पर इन्हें विश्वास होता है । व्यवहार में

inner-voice के अनुसार चलनेवाले जो व्यक्ति हमें दिखायी देते हैं, उन्हें हम प्राय: अंतरात्मा कह सकते हैं ।

सब प्रकार के कर्मबंधनों से मुक्त, शुद्धआत्मा को परमात्मा कहते हैं । अरहंत (अर्हत्) जीवन्मुक्त परमात्मा होते हैं । तथा सिद्ध, सिद्धशिलापर आरूढ होते हैं ।

(४) अक्खाणि बहिरप्पा ---

उपरोक्त गाथा का भावार्थ इस गाथा में अलग शब्दों में प्रकट किया है । इंद्रियों को महत्त्व देनेवालों को बहिरात्मा कहा है । अंतरात्मा को हम intuitive consciousness कह सकते हैं । कर्मरूपी कलंक से सर्वथा मुक्त आत्मा को परमात्मा कहा है ।

इस गाथा में प्रयुक्त 'देव' शब्द जिनेश्वर भगवान का वाचक है ।

(५) आरूहवि अंतरप्पा ---

त्रिप्रकार की आत्माओं के विवेचन से यह धारणा हो सकती है कि यह तीन अलगअलग प्रकार के लोग है और अलग-अलग प्रकार की आत्मा है । प्रस्तुत गाथा से यह स्पष्ट होता है कि एक ही व्यक्ति की किसी समय बहिर्मुख प्रवृत्ति होती है, किसी समय अंतर्मुख प्रवृत्ति होती है और शुद्ध आत्मा निश्चयनय से हर एक में मौजूद होता ही है । आध्यात्मिक शुद्धि पाने के लिए ध्यान की आवश्यकता है । ध्यान की तीन श्रेणियाँ इस गाथा में बतायी है ।

अंतरात्मा में मग्न होने का अभ्यास करने पर बहिर्मुख आत्मा की प्रवृत्तियों पर हम रोक लगा सकते हैं या पूर्ण त्याग भी कर सकते हैं । अंतर्मुखी प्रवृत्तियों को एकाग्र करके हम शुद्ध आत्मस्वरूप पर ध्यान दे सकते हैं। ध्यान की यह पद्धति जिनवरों के द्वारा कही गयी है ।

(६) अप्पा कत्ता विकत्ता य ---

जैनशास्त्र के अनुसार प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र है । उसके द्वारा किये हुए कर्मों के अनुसार ही उसका संसरण चला है । अपने किये हुए प्रत्येक कर्म का वही जिम्मेदार है । यहाँ विकत्ता का अर्थ 'कर्म भोगनेवाला'- इस प्रकार का है । कर्म उसने किये हैं तो वह भोगने में कोई दूसरा व्यक्ति या ईश्वर उसे सहायक नहीं होता । किसी नाकिसी जन्म में उसके सुकृत और दुष्कृतों के सुखदु:खरूप परिणाम उसे अनिवार्यता से भुगतने ही पडते हैं ।

एक ही जीव खुद का मित्र और शत्रु कैसे बन सकता है ? कहा है कि आत्मा जब सदाचरण में प्रवृत्त होता है तो वह खुद का मित्र होता है । जब वह दुराचरण में मग्न होता है तब खुद का शत्रु बनता है ।

(७) वरं मे अप्पा दंतो ---

सामान्यत: कोई भी व्यक्ति बंधन में रहना नहीं चाहता । जादा ही उच्छृंखलता दिखाये तो दूसरों के द्वारा दमन, ताडन और बंधन की आशंका हमेशा रहेगी । दूसरों के द्वारा डाले गये बंधनों में रहने की अपेक्षा खुद ही संयम और तप का आधार लेकर नियंत्रण में रहने का प्रयास करना, जादा ही अच्छा है ।

उत्तराध्ययनसूत्र के इस गाथा पर एक अच्छी कथा उद्धृत की जाती है । वन में तापसाश्रम में एक युवा हाथी था । वह बारबार आश्रम के वृक्ष एवं कुटियाँ उद्ध्वस्त करता था । तापसकुमारों ने राजा के पास शिकायत की । राजा ने सिपाहियों से उस हाथी को पकडवाया और उसे लोहे की बेडियों में डाला । हाथी ने ताकद लगाकर स्तंभ ही उखाड दिया और फिर आश्रम में जाकर आश्रम उद्ध्वस्त किया । इस घटना की दो-तीन बार पुनरावृत्ति हुई ।आखिर एक तापसकुमार ने हाथी से कहा, 'राजा की बेडी में तुम अपनेआप शांत रहो । देखो ! तुम्हारे अनुकूल ही सब हो जाएगा ।' हाथी बेडियों में शांत रहने लगा । राजा को विश्वास हुआ । उसने स्वयं उसे बंधनहीन कर दिया ।

'स्वयंस्फूर्ति से बंधन में रहने का अगर निर्णय लिया तो सच्चे अर्थ में बंधनमुक्त होने की संभावना अधिक ही

रहती है', यह इस कहानी की नसीयत है ।

(८) जो सहस्स सहस्साणं ---

प्रस्तुत गाथा में लाखों के युद्ध में पाया हुआ विजय एवं आत्मा पर पाया गया विजय इसकी तुलना की गयी है । शत्रुओं पर पाया गया विजय भौतिक विजय है । भौतिक विजय तात्कालिन समाधान एवं भौतिक समृद्धि दे सकता है । रागद्वेष एवं कषायों से भरी खुद की आत्मा पर काबू पाना भौतिक विजय से बहुत ही कठिन है । जैनशास्त्र में हमेशा कहा गया है कि भौतिक, व्यावहारिक या बाह्य विजय से आत्मविजय कई गुना श्रेष्ठ है । क्योंकि आत्मविजयी व्यक्ति को जीतने लायक कोई भी दूसरी चीज नहीं रहती ।

(९) अप्पा नई वेयरणी ---

प्रस्तुत गाथा में वैतरणी नदी, कूटशाल्मली वृक्ष, कामधेनु और नंदनवन का निर्देश है । इनमें से पहले दो दुखद है और अंत के दो सुखद है । भावार्थ यह है कि अपने किये हुए कर्म के अनुसार ही नरक के दुःखों किंवा स्वर्ग के सुखों की प्राप्ति होती है ।

इसी भावार्थ को लेकर छठी गाथा में आत्मा को कर्ता-विकर्ता तथा मित्र-शत्रु कहा है ।

****

स्वाध्याय-६

१) जीव को 'उत्तम' क्यों कहा है ? (पाँच-छह वाक्य) (गाथा १ भावार्थ)
२) नकारात्मक दृष्टि से जीव का वर्णन किस प्रकार किया है ? (एक वाक्य) (गाथा २ अर्थ)
३) 'बहिरात्मा' किन्हें कहते हैं ? (दो-तीन वाक्य) (गाथा ३,४ भावार्थ)
४) 'अंतरात्मा' किन्हें कहते हैं ? (दो-तीन वाक्य) (गाथा ३,४ भावार्थ)
५) परमात्मा के दो प्रकार कौनसे बताएँ है ? (एक वाक्य) (गाथा ३ अर्थ)
६) तीन प्रकार के आत्मा के सहारे हम किस प्रकार ध्यान कर सकते हैं ? (एक-दो वाक्य) (गाथा ५ अर्थ)
७) 'आत्मा सुखदुःखों का कर्ताभोक्ता है' - स्पष्ट कीजिए । (तीन-चार वाक्य) (गाथा ६ भावार्थ)
८) 'अपनी आत्मा, अपना मित्र भी है, शत्रु भी है' - स्पष्ट कीजिए । (दो वाक्य) (गाथा ६ भावार्थ)
९) आत्मदमन और परदमन इनमें क्या श्रेष्ठ है ? क्यों ? (दो-तीन वाक्य) (गाथा ७ भावार्थ)
१०) परमविजय कौनसा है ? क्यों ? (तीन-चार वाक्य) (गाथा ८ भावार्थ)
११) 'वेयरणी', 'कूडसामली', 'कामदुहा धेणू' और 'नंदणवण' इन शब्दों के संक्षेप में अर्थ लिखिए । (गाथा ९ अर्थ)

****

(७) अहिंसा

प्रस्तावना :

हम सब जानते ही है कि अहिंसा और दया केवल जैनधर्म के ही नहीं, जगत् के सभी धर्मों के मूलाधार तत्त्व है । फिर अहिंसाधर्म के तौरपर जैनधर्म की पहचान क्यों होने लगी ? इसका कारण यह है कि हिंसा और अहिंसा का विचार खानपान, आचारव्यवहार सभी दृष्टि से जितना जैनियों ने किया है, उतना शायद किसी धर्म ने नहीं किया है । प्राचीन जैनशास्त्रों में अहिंसा को 'प्राणातिपातविरमण' कहा है । और अन्य महाव्रत भी विरमण के रूप में प्रस्तुतकिये हैं । बाद में वे सब अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि शब्दों में प्रकट किये गये ।

जैनियों की अहिंसा सूक्ष्म होने का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि पृथ्वीकायिक आदि पाँच प्रकार के जीवोंको उन्होंने 'एकेंद्रिय जीव' कहा है । पृथ्वी, जल, वायु आदि सजीव होने का जिक्र शायद किसी भी अन्य विचारधारा में नहीं हुआ है । जीवविचार के सूक्ष्मता के कारण ही अहिंसाविचार में भी सूक्ष्मता दिखायी देती है ।

भावार्थ स्पष्टीकरण :

(१) सव्वे जीवा ---

दशवैकालिकसूत्र की इस गाथा में बहुत ही सरल शब्दों में अहिंसा का स्वरूप स्पष्ट किया है । पूरे लोक में अनंत जीवों का अस्तित्व पाया जाता है । हर एक जीव की यह सहज प्रेरणा होती है कि वह जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता । इस वस्तुस्थिति की ओर निर्देश करके प्रस्तुत गाथा में बताया है कि मेरी जीने की प्रेरणा के साथसाथ अन्य जीवों की जीवित रहने की प्रेरणा का आदर करना चाहिए । इस भावना से ही निर्ग्रंथ मुनि सभी प्रकार कीहिंसा का त्याग करते हैं ।

(२) समया सव्वभूएसु ---

जगत् के सब प्राणिमात्रों के प्रति समभाव, शत्रु और मित्रों के प्रति रागद्वेष न रखना एवं सभी प्रकार की (स्थूल और सूक्ष्म) हिंसा से निवृत्त होना - ये तीन चीजें धार्मिक आचरण का सार है ।

प्रस्तुत गाथा में इस बात पर बल दिया है कि कहने और लिखने में कितना ही आसान हो, यह करने में याने आचरण में बहुत कठिन है । अगर हम निश्चय करे तो अल्पकाल तक इसका पालन कर भी सकते हैं लेकिन इनको व्रत के स्वरूप जीवनपर्यंत निभाना अतीव दुष्कर है ।

(३) तसे पाणे न हिंसेज्जा ---

प्रस्तुत गाथा में विविधता से भरे हुए विश्व का, निरीक्षण करने के लिए कहा है । यह करते समय सभी प्रकारके प्राणिमात्रों की हिंसा के विचार से दूर रहने की अपेक्षा व्यक्त की है ।

गाथा के प्रथम चरण में 'त्रस' याने हलन-चलनवाले प्राणियों की हिंसा न करने का निर्देश किया है । पूर्ण अहिंसा की दृष्टि से देखे तो पृथ्वी, जल आदि स्थावरों की भी हिंसा नहीं करनी चाहिए । लेकिन हमारे जीवन की धारणा के लिए, हमें इच्छा हो या न हो इनकी हिंसा अनिवार्यता से होती है । इसलिए वचन से अथवा कर्म (काया) से त्रसों की हिंसा नहीं करनी चाहिए । स्थावर हो या त्रस सभी जीवों के प्रति मन से याने भाव से पूर्णत: निवृत्त होना ही यहाँ अपेक्षित है ।

(४) अजयं चरमाणो ---

प्रस्तुत गाथा में 'अजयं चरमाणो' इस पदावलि का अर्थ ठीक तरह से समझ लेना चाहिए । 'जयणा' शब्द का

अर्थ 'यतना' है । 'यतना' याने ध्यानपूर्वक, एकाग्रतापूर्वक गमनागमन आदि प्रवृत्तियाँ करना ।'अजयं' शब्द का अर्थ है, असावधानी से या प्रमादपूर्वक गमनागमन आदि करना । जैनशास्त्र में यतना-अयतना अर्थात् प्रमाद-अप्रमाद को बहुत ही महत्त्व दिया है । अप्रमादपूर्वक किये हुए कर्मों से कर्मबंध नहीं होते । प्रमादयुक्त कर्मोंसे पापकर्म के बंध होते हैं और उसके बुरे परिणाम भुगतने ही पडते हैं ।

यद्यपि यहाँ 'चरमाणो' शब्द का प्रयोग है तथापि उसमें खाना-पिना-सोना-उठना-बैठना-बोलना आदि सभी क्रियाएँ समाविष्ट है ।

इस गाथा में प्रयुक्त 'प्राण'(पाण) शब्द 'त्रस' प्राणियों का वाचक है । उसी प्रकार 'भूत' (भूय) शब्द 'स्थावर' प्राणियों का वाचक है ।

'अप्रमाद की ओर ध्यान आकृष्ट करना', इस गाथा का प्रयोजन है ।

(५) आदाणे णिक्खेवे ---

'अष्टप्रवचनमाता' विषय के अंतर्गत पाँच समितियों का विचार हमने किया है । समिति, अप्रमाद और अहिंसा का बहुत ही निकटवर्ती संबंध है । प्रस्तुत गाथा की पहली पंक्ति में प्राय: सभी समितियों का उल्लेख है।

अप्रमत्त याने यतनावान् और दयायुक्त होने से व्यक्ति अहिंसक होता है ।

(६) जीववहो अप्पवहो ---

'जीववहो अप्पवहो ---' इस पदावलि में यह अर्थ निहित है कि अगर मैं खुद के स्वार्थ के लिए अन्य जीव का घात करूँगा तो परिणामस्वरूप या अंतिमत: पापबंध होने के कारण घात तो मेरा ही होगा । याने हिंसक क्रिया हिंसा करनेवालो को ही अधिक घातक होती है ।

यही भावना जीवदया के समय भी मन में रखनी चाहिए । अगर मैं किसी पर दया या उपकार करू तो, वह दया भी परिणामस्वरूप, अंतिमत:, स्वयं के प्रति ही दया होगी । क्योंकि पुण्यप्राप्ति रूप फल तो स्वयं को ही मिलना है ।

'हिंसा किस प्रकार टालनी चाहिए ?' - यह स्पष्ट करने के लिए विषैले काँटे का उदाहरण दिया है । विषैले काँटे का चुभना या उससे बचना, काँटे की अपेक्षा से मुझे ही घातक या फायदेमंद है । काँटा चुभनेसे मुझे ही बाधा होगी । पूरा शरीर विषयुक्त होकर शायद प्राण भी चले जायेंगे । काँटे से बचने से मैं बाधा टाल सकूँगा याने भविष्यकालीन अपरिमित हानि दूर कर सकूँगा । अगर मैं किसी की हिंसा नहीं कर रहा हूँ, तो इसका मतलब यहनहीं की मैं दूसरों पर कोई उपकार कर रहा हूँ । अहिंसा का पालन मुझे अपना स्वाभाविक धर्म लगना चाहिए । यही बात दया और दान की भी है ।

(७) देव-गुरूण णिमित्तं ---

प्रस्तुत गाथा की एक विशिष्ट पार्श्वभूमि है । गाथा का अर्थ लगाते समय वह हमें ध्यान में रखनी चाहिए । समकालीन हिंदु समाज में पशुबलिप्रधान यज्ञ एवं आडंबरप्रधान उत्सवों की भरमार थी । 'देव, गुरु आदि निमित्तों से हिंसा करने में कोई पाप नहीं है, उससे कर्मबंध भी नहीं होता' - यह विचारधारा मौजूद थी ।

इसके बिलकुल विपरीत, जिनदेवों ने 'हिंसारहित होना' - यह धर्म का प्रथम लक्षण माना था । प्रस्तुत गाथा में कहा है कि धर्म एक साथ 'हिंसासहित' और 'हिंसारहित' दोनों प्रकार का कैसे हो सकता है ? जैनशास्त्रके अनुसार जिनवचन कभी असत्य नहीं होते । इसलिए हिंसायुक्त धर्माचरण को असल में कोई स्थान नहीं है ।

(८) पाणे य नाइवाएज्जा ---

जो पाँच समितियों से युक्त होता है, उसे 'समित' कहते हैं । जो खुद को समित कहलाता है, उसका यह प्रथम

कर्तव्य है कि वह किसी प्राणी के प्राणों का अतिपात (वध) न करें । सभी पाप प्रवृत्तियों से दूर रहनेवाले धार्मिक प्रवृत्तिवाले व्यक्ति के लिए गाथा की दूसरी पंक्ति में एक उदाहरण प्रयुक्त किया है । कितना भी पानी ऊपर से गिरे, ऊँचे स्थान से जिस प्रकार पानी बहकर निकल ही जाता है, उसी प्रकार समित होने के कारण उस व्यक्ति में कर्मऔर कर्मबंध नहीं ठहरते । उससे अलग हो जाते हैं ।

(९) सव्वो हि जहायासे ---

जैनधर्म में अहिंसा तत्त्व समग्र जैन आचारशास्त्र की आधारशिला है । जैन दृष्टि से आचार दो प्रकार का है - साधुआचार और श्रावकाचार । दोनों अलग-अलग कहने के बदले यहाँ तीन प्रातिनिधिक शब्दों का प्रयोग किया है । 'व्रत' शब्द से हम महाव्रत या अणुव्रत ले सकते हैं । 'गुण' शब्द साधु के गुण अथवा श्रावक के गुणव्रत - इन दोनों अर्थों से ले सकते हैं । 'शील' शब्द तो सामान्यत: संयम के आचार का वाचक है ।

प्रस्तुत गाथा में कहा है कि व्रत, गुण और शीलरूप आचार, अहिंसा की संकल्पना पर ही दृढ रूप से प्रतिष्ठित है ।

अहिंसा का महत्त्व समझाने के लिए आकाश और भूमि का उदाहरण दिया है । जैनशास्त्र के अनुसार आकाश ही ऊर्ध्व, अधो और मध्यलोक को अवकाश देता है । यह अवकाश ही त्रैलोक्य का आधार है । भूमि की बात थोडी अलग है । भूमि, सभी द्वीप और समुद्रों को प्रत्यक्षत: आधार देती है ।

भूमि और आकाश के दृष्टांत देने के पीछे अहिंसाव्रत की विशालता और समग्रता भी आचार्यश्री के मन में अवश्य है ।

(१०) तसपाणे वियाणेत्ता ---

प्रस्तुत गाथा में ब्राह्मण का लक्षण बताया है । 'ब्राह्मण' शब्द की नयी परिभाषा प्रस्तुत करने से जाहीर है कि जन्माधार जातिव्यवस्था जैनशास्त्र को सम्मत नहीं है । गुण और वर्तन के आधार से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार शब्दों की परिभाषा की है ।

ब्राह्मण का लक्षण देते हुए यहाँ अहिंसा को प्राधान्य दिया है । कहा है कि - 'जो त्रस और स्थावर जीवों को सम्यक् प्रकार से जानकर उनकी मन,वचन और काया से हिंसा नहीं करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।'

'ब्राह्मण' शब्द के लिए प्राकृत शब्द 'माहण' है । माहण शब्द की उत्पत्ति इस प्रकार दी जाती है - मा+हण याने 'किसी को मत मारो' - ऐसा जो कहता है वही ब्राह्मण है ।

****

स्वाध्याय-७

१) 'सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविउं न मरिज्जिउं ।' स्पष्ट कीजिए । (तीन-चार वाक्य) (गाथा १ भावार्थ)

२) त्रस और स्थावरों के प्रति किस प्रकार अहिंसा का आचरण करना अपेक्षित है ?
(तीन-चार वाक्य) (गाथा ३ भावार्थ)

३) अयतनापूर्वक वर्तन क्यों नहीं करना चाहिए ? (दो-तीन वाक्य) (गाथा ४ भावार्थ)

४) 'अप्रमत्त और दयाशील व्यक्ति अहिंसक है ।' - स्पष्ट कीजिए । (तीन-चार वाक्य) (गाथा ५ अर्थ, भावार्थ)

५) 'विषकंटक के समान हिंसा टालनी चाहिए' - स्पष्ट कीजिए । (पाँच-छह वाक्य) (गाथा ६ भावार्थ)

६) हिंसारहित और हिंसासहित धर्म के बारे में, 'देव-गुरूण णिमित्तं' इस गाथा में क्या कहा है ?
(दो-तीन वाक्य) (गाथा ७ भावार्थ)

७) अहिंसा का महत्त्व समझाने के लिए आकाश और भूमि का उदाहरण क्यों दिया है ?
(पाँच-छह वाक्य) (गाथा ९ भावार्थ)

८) सच्चे अर्थ में ब्राह्मण कौन है ? (दो वाक्य) (गाथा १० अर्थ)

****

(जैनॉलॉजी–प्रवेश (पंचमी) पुस्तकातील – पान ३० ते ६४ येथे घेणे)

(८) श्रावक का आचार

प्रश्न १ : जैन धर्म में कौनसे दो आचारों का वर्णन किया जाता है ? (एक वाक्य)
प्रश्न २ : 'श्रावक' किसे कहते हैं ? (एक वाक्य)
प्रश्न ३ : 'उपासक' किसे कहते हैं ? (एक वाक्य)
प्रश्न ४ : जैन आचार किसे कहा है ? (एक वाक्य)
प्रश्न ५ : जैन धर्म के दो संप्रदायों के नाम लिखिए । (एक वाक्य)
प्रश्न ६ : श्रावकाचार का दूसरा नाम क्या है ? (एक वाक्य)
प्रश्न ७ : श्वेतांबरों के पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों के नाम लिखिए ।
प्रश्न ८ : 'अणुव्रत' किसे कहते हैं ? (एक वाक्य)
प्रश्न ९ : अहिंसा अणुव्रत का अर्थ लिखिए । (एक वाक्य)
प्रश्न १० : स्थूल हिंसा के चार प्रकारों के नाम लिखिए ।
प्रश्न ११ : 'सिर्फ झूठ बोलना ही असत्य नहीं है' – स्पष्ट कीजिए । (एक वाक्य)
प्रश्न १२ : 'सत्य' एवं 'प्रिय–अप्रिय' के बारे में शास्त्र में कौनसा निर्देश दिया है ? (एक वाक्य)
प्रश्न १३ : चोरी की संक्षिप्त व्याख्या लिखो । (एक वाक्य)
प्रश्न १४ : परिग्रह और परिमाण दोनों शब्दों के अर्थ लिखिए । (दो वाक्य)
प्रश्न १५ : अपनी सब प्रवृत्तियों को विशिष्ट क्षेत्र की मर्यादा डालने से हमारा कौनसा फायदा होता है ? (एक वाक्य)
प्रश्न १६ : 'भोग' किसे कहते हैं ? 'उपभोग' किसे कहते हैं ? प्रत्येक के दो–तीन उदाहरण लिखिए । (चार वाक्य)
प्रश्न १७ : अमर्याद भोगोपभोगों का कौनसा बुरा सामाजिक नतीजा होगा ? (एक वाक्य)
प्रश्न १८ : 'अनर्थदण्ड' का अर्थ संक्षेप में लिखिए । (एक वाक्य)
प्रश्न १९ : अनर्थदण्डविरति कौनसे चार प्रकारों से होती है ? सिर्फ नाम लिखिए ।
प्रश्न २० : ग्रहण किये हुए व्रतों का बारबार अभ्यास करने को कौनसा व्रत कहते हैं ? (एक वाक्य)
प्रश्न २१ : 'सामायिक' किसे कहते हैं ? (एक वाक्य)
प्रश्न २२ : पोषधव्रत का पालन किस प्रकार करने की प्रथा है ? (पाँच–छह वाक्य)
प्रश्न २३ : दिगंबर श्रावकाचार हमेशा किसके आधारपर बताया जाता है ? (एक वाक्य)
प्रश्न २४ : ग्यारह प्रतिमाओं के नाम क्रम से लिखिए ।
प्रश्न २५ : दर्शन–श्रावक को कौनसी आठ चीजें प्रयत्नपूर्वक टालनी चाहिए ? (एक वाक्य)
प्रश्न २६ : सात व्यसनों के नाम लिखिए ।
प्रश्न २७ : दिगंबरीय व्रत–प्रतिमा के अंतर्गत श्वेतांबरीय श्रावकाचार के कौनसे व्रत समाविष्ट होते हैं ? (एक वाक्य)
प्रश्न २८ : सचित्त–त्याग–प्रतिमा का धारक खानपानविषयक कौनसा आचार अपनाता है ? (दो वाक्य)
प्रश्न २९ : 'रात्रिभोजन–त्याग' आरोग्य की दृष्टि से भी किस प्रकार महत्त्वपूर्ण है ? (दो–तीन वाक्य)
प्रश्न ३० : श्रावक की ग्यारहवीं प्रतिमा को 'श्रमणभूत प्रतिमा' क्यों कहते हैं ? (दो वाक्य)
प्रश्न ३१ : हर जैन श्रावक अगर व्रतों के मार्गदर्शन में चलेगा तो कौनसे सामाजिक लाभ होंगे ? (एक वाक्य)
प्रश्न ३२ : जैन शास्त्र के अनुसार धार्मिक मृत्यु स्वीकारने के व्रत को क्या कहते हैं ? (एक वाक्य)

****

(जैनॉलॉजी–परिचय (१) पान – २६ ते ३२ येथे घेणे)

(९) व्याकरण पाठ

आकारान्त स्त्री. 'माला' शब्द

विभक्ति	एकवचन	अनेकवचन
प्रथमा	माला	माला, मालाओ
(Nominative)	(एक माला)	(अनेक मालाएँ)
द्वितीया	मालं	माला, मालाओ
(Accusative)	(माला को)	(मालाओं को)
तृतीया	मालाए	मालाहि, मालाहिं
(Instrumental)	(माला ने)	(मालाओं ने)
पंचमी	मालाए, मालाओ	मालाहिंतो
(Ablative)	(माला से)	(मालाओं से)
षष्ठी	मालाए	मालाण, मालाणं
(Genitive)	(माला का)	(मालाओं का)
सप्तमी	मालाए	मालासु, मालासुं
(Locative)	(माला में)	(मालाओं में)
संबोधन	माला, माले	माला, मालाओ
(Vocative)	(हे माला !)	(हे मालाओं !)

इसी तरह साला, बाला, पूजा, देवया, गंगा, कन्ना इ. आकारांत स्त्रीलिंगी शब्द लिखिए ।

(१) प्रथमा विभक्ति : (Nominative) **कर्ताकारक**

१) गंगा सव्वनईसु सेट्ठा ।
गंगा सब नदियों में श्रेष्ठ है ।

२) कन्नाओ पाढसालं गच्छंति ।
कन्याएँ पाठशाला जाती हैं ।

(२) द्वितीया विभक्ति : (Accusative) **कर्मकारक**

१) मालायारो मालं गुंफइ ।
माली (मालाकार) माला गूंथता है ।

२) विविहजणा विविहाओ देवयाओ वंदंति ।
विविध लोग विविध देवताओं को वंदन करते हैं ।

(३) तृतीया विभक्ति : (Instrumental) **करणकारक**

१) सा मालाए सिवं पूएइ ।
वह माला से शिव की पूजा करती है ।

२) अम्हे मालाहिं घरं विहूसेमो ।
हम मालाओं से घर विभूषित करते हैं ।

(४) पंचमी विभक्ति : (Ablative) **अपादानकारक**

१) साहाए पुप्फाइं निवडंति ।
शाखा से फूल गिरते हैं ।

२) देवयाहिंतो जणा वरा लहंति ।
देवताओं से लोग वर प्राप्त करते हैं ।

(५) षष्ठी विभक्ति : (Genitive) **संबंधकारक**

१) पसंसाए को ण सुहावेइ ?
प्रशंसा किसे सुहावनी नहीं लगती ?

२) महिलाणं मणं को जाणइ ?
महिलाओं का मन कौन जानता है ?

(६) सप्तमी विभक्ति : (Locative) **अधिकरणकारक**

१) तस्स चित्तं पूयाए रमइ ।
उसका मन पूजा में रमता है ।

२) खगाणं नीडा डालासु सोहंति ।
पक्षियों के घोंसले डालाओं पर शोभते हैं ।

(७) संबोधन विभक्ति : (Vocative) **निमंत्रण, संबोधन**

१) नीले ! इह आगच्छ ।
नीला ! इधर आओ ।

२) देवयाओ ! अम्हे खमह ।
देवताओ ! हमें क्षमा करो ।

(जैनॉलॉजी–परिचय (१) पुस्तकातील पान – ३२ ते ३६ येथे घेणे)

भूतकाल (Past-Tense)

जो क्रिया घटी हुई है, उसके लिए हम भूतकालिक क्रियापदों का उपयोग करते हैं ।

भूतकाल के प्रत्यय

पुरुष	**एकवचन**	**अनेकवचन**
प्रथम पुरुष	इत्था	इंसु
द्वितीय पुरुष	इत्था	इंसु
तृतीय पुरुष	इत्था	इंसु

भूतकाल

धातु (क्रियापद) : गच्छ (जाना)

पुरुष	**एकवचन**	**अनेकवचन**
प्रथम पुरुष	गच्छित्था	गच्छिंसु
द्वितीय पुरुष	गच्छित्था	गच्छिंसु
तृतीय पुरुष	गच्छित्था	गच्छिंसु

सर्वनामसहित भूतकाल के क्रियापद

क्रियापद : भक्ख (खाना)

पुरुष	**एकवचन**	**अनेकवचन**
प्रथम पुरुष	अहं भक्खित्था । (मैंने खाया ।)	अम्हे भक्खिंसु । (हमने खाया ।)
द्वितीय पुरुष	तुमं भक्खित्था । (तूने/तुमने खाया ।)	तुम्हे भक्खिंसु । (तुमने/सबने खाया ।)
तृतीय पुरुष	सा भक्खित्था । (उसने खाया ।)	ते भक्खिंसु । (उन्होंने खाया ।)

'इत्था' और 'इंसु' ये भूतकालवाचक प्रत्यय जादा तर अर्धमागधी भाषा में ही पाये जाते हैं । सामान्य प्राकृत में भूतकालिक क्रियापदों के स्थान पर भूतकालिक विशेषण प्रयुक्त करते हैं ।

कुछ प्राकृत क्रियापद (धातु), उनके अर्थ तथा वाक्य ।

१) पास – देखना
अहं मोरस्स चित्तं पासित्था ।
मैंने मोर का चित्र देखा ।

२) पिव – पीना
अम्हे दुद्धंपिविंसु ।
हमने दूध पिया ।

३) उवविस – बैठना ।
तुमं कत्थ उववविसित्था ?
तू कहाँ बैठी थी ?

४) सिक्ख – सीखना ।
तुम्हे किं सिक्खिंसु ?
तुमने क्या सीखा ?

५) पड – गिरना ।
सो रुक्खाओ पडित्था ।
वह झाड से गिरा ।

६) गच्छ – जाना ।
ते वणं गच्छिंसु ।
वे वन में गये ।

भविष्यकाल (Future-Tense)

जो घटनाएँ आगामी काल में होनेवाली हैं, उसके लिए हम भविष्यकालिक क्रियापदों का उपयोग करते हैं । भविष्यकाल के प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं – एक 'इस्स' प्रत्यय से और 'इह' प्रत्यय से होते हैं ।

(१) भविष्यकाल के प्रत्यय

पुरुष	**एकवचन**	**अनेकवचन**
प्रथम पुरुष	इस्सामि, इस्सं	इस्सामो
द्वितीय पुरुष	इस्ससि	इस्सह
तृतीय पुरुष	इस्सइ	इस्संति

भविष्यकाल

धातु (क्रियापद) : गच्छ (जाना)

पुरुष	**एकवचन**	**अनेकवचन**
प्रथम पुरुष	गच्छिस्सामि, गच्छिस्सं	गच्छिस्सामो
द्वितीय पुरुष	गच्छिस्ससि	गच्छिस्सह
तृतीय पुरुष	गच्छिस्सइ	गच्छिस्संति

सर्वनामसहित भविष्यकाल के क्रियारूप

क्रियापद : भक्ख (खाना)

पुरुष	**एकवचन**	**अनेकवचन**
प्रथम पुरुष	अहं भक्खिस्सामि । अहं भक्खिस्सं । (मैं खाऊंगा ।)	अम्हे भक्खिस्सामो । (हम खायेंगे ।)
द्वितीय पुरुष	तुमं भक्खिस्ससि । (तू खायेगा । तुम खाओगे ।)	तुम्हे भक्खिस्सह । (तुम सब खाओगे ।)
तृतीय पुरुष	सो भक्खिस्सइ । (वह खाएगा ।)	ते भक्खिस्संति । (वे खाएँगे ।)

(२) भविष्यकाल के प्रत्यय

पुरुष	एकवचन	अनेकवचन
प्रथम पुरुष	इहिमि, इहामि	इहिमो, इहामो
द्वितीय पुरुष	इहिसि	इहिह
तृतीय पुरुष	इहिइ	इहिंति

भविष्यकाल

धातु (क्रियापद) : गच्छ (जाना)

पुरुष	एकवचन	अनेकवचन
प्रथम पुरुष	गच्छिहिमि, गच्छिहामि	गच्छिहिमो, गच्छिहामो
द्वितीय पुरुष	गच्छिहिसि	गच्छिहिह
तृतीय पुरुष	गच्छिहिइ	गच्छिहिंति

सर्वनामसहित भविष्यकाल के क्रियारूप

क्रियापद : भक्ख (खाना)

पुरुष	एकवचन	अनेकवचन
प्रथम पुरुष	अहं भक्खिहिमि । अहं भक्खिहामि । (मैं खाऊंगा ।)	अम्हे भक्खिहिमो । अम्हे भक्खिहामो (हम खायेंगे ।)
द्वितीय पुरुष	तुम भक्खिहिसि । (तू खायेगी । तुम खाओगे ।)	तुम्हे भक्खिहिह । (तुम सब खाओगे ।)
तृतीय पुरुष	सा भक्खिहिइ । (वह खाएगी ।)	ते भक्खिहिंति । (वे खाएँगी ।)

कुछ प्राकृत क्रियापद (धातु), उनके अर्थ तथा वाक्य ।

१) वय – बोलना ।
अहं निच्चं सच्चं वइस्सामि/वइहिमि ।
मैं हमेशा सच बोलूंगा ।

२) कर – करना ।
अम्हे जुज्झं करिस्सामो/करिहिमो ।
हम युद्ध करेंगे ।

३) लह – प्राप्त होना ।
तुमं विउलं धणं लहिस्ससि/लहिहिसि ।
तुझे विपुल धन प्राप्त होगा ।

४) भक्ख – खाना ।
तुम्हे सुहेण भक्खिस्सह/भक्खिहिह ।
तुम सुखपूर्वक खाना खाओगे ।

५) सुण – सुनना ।
सो मम ण सुणिस्सइ/सुणिहिइ ।
वह मेरा नहीं सुनेगा ।

६) गा – गाना ।
ते महुरं गीयं गाइस्संति/गाइहिंति ।
वे मधुर गीत गायेंगे ।

७) हण – मारना ।
बंभणो जीवा न हणिस्सइ ।
ब्राह्मण जीवों को नहीं मारेगा ।

८) हो – होना ।
सव्वेजणा सुहिणो होइस्संति/होइहिंति ।
सब लोग सुखी होंगे ।

९) वंद – वंदन करना ।
नेहा जिणपडिमं वंदिस्सइ/वंदिहिइ ।
स्नेहा जिनप्रतिमा को वंदन करेगी ।

१०) दे – देना ।
मुणिवरो अम्हे सावयवयाइं देइस्सइ/देइहिइ ।
मुनिवर हमें श्रावकव्रत देंगे ।

११) उड्ड – उडना ।
पक्खी पंजराओ उड्डिस्सइ/उड्डिहिइ ।
पक्षी पिंजरे से उडेगा ।

(१) व्याकरणपाठ अभ्यासविषयक सूचनाएँ ।

* परीक्षा में व्याकरणपाठ पर आधारित प्रश्न लगभग १० गुणों के होंगे ।
* नामविभक्ति पर आधारित प्रश्न अकारान्त पुल्लिंगी और आकारान्त स्त्रीलिंगी शब्दों पर आधारित होंगे ।
* क्रियापद पर आधारित प्रश्न वर्तमानकाल, भूतकाल एवं भविष्यकाल पर आधारित होंगे ।

* इस व्याकरणपाठ के अंतर्गत आए हुए प्राकृत वाक्यों का हिंदी अनुवाद पूछा जायेगा । हिंदी वाक्यों का प्राकृत नहीं पूछा जायेगा ।

(२) नमूने के तौर पर कुछ वस्तुनिष्ठ प्रश्न दिये हैं । इसके आधार से विद्यार्थी परीक्षा की तैयारी करें ।

१) निम्नलिखित क्रियापदों के समूह से वर्तमानकाल, भूतकाल और भविष्यकाल के क्रियापद अलग–अलग कीजिए ।

भणइ, भक्खिंसु, पुच्छंति, खिवसि, पासित्था, पिविस्सामि, पूइस्सामि, उववसामो, सिक्खामि, पडिंसु, जीविहिह, लहेमो, गुंफिहिमि, सुणिस्सामो, गायंति, हणिस्सइ, होमि, वंदित्था, भुंजह, सुविस्सह, आगच्छिहिइ, पुच्छिंसु, नमसि, रमिस्ससि, लहित्था, लिहिस्संति ।

(२) (अ) अधोरेखित क्रियापदों के वर्तमान काल के उचित क्रियारूप लिखिए ।

१) सो रत्तिं न (भुंज) ।

२) अम्हे भारहे (वस) ।

(ब) अधोरेखित क्रियापदों के भूतकाल के उचित क्रियारूप लिखिए ।

१) सीया रमणीयं वणं (पास) ।

२) ते दुद्धं (पिव) ।

(क) अधोरेखित क्रियापदों के भविष्यकाल के उचित क्रियारूप लिखिए ।

१) अरविंदो पुण्णेण सग्गं (लह) ।

२) तुम्हे सुहेण (जीव) ।

(३) उचित पर्याय चुनिए ।

१) तुम्हे संझाए कीलह/कीलसि ।

२) अम्हे उज्जाणे रमामि/रमामो ।

३) सो मोरस्स चित्तं पासित्था/पासिंसु ।

४) ते पोत्थयं पढइ/पढंति ।

५) रामो वणं गच्छित्था/गच्छिंसु ।

६) नीला विउलं धणं लहिस्ससि/लहिस्सइ ।

७) कागो पंजराओ उड्डिहिइ/उड्डिहिंति ।

८) कन्नाओ महुरं गीयं गायंति/गायइ ।

९) अहं सच्चं भणामि/भणामो ।

१०) छत्ता आयरियं पुच्छंति/पुच्छइ ।

(४) अधोरेखित शब्दों की विभक्ति लिखिए ।

१) जिणेहिं धम्मो कहिओ ।

२) कमला संझाए कीलिस्सइ ।

३) चंदो आगासे सोहित्था ।
४) सा बाला सुहेण सुवइ ।
५) अहं पाढसालं गच्छिस्सामि ।
६) पूयाए विण्हू पसन्नो ।
७) महावीरस्स जणणी तिसला ।
८) तुमं हत्थेण लिहसि ।
९) को मालासु पुप्फाइं गुंफइ ?
१०) साहाहिंतो फलाइं पडंति ।

(५) अधोरेखित विभक्तियों के उचित पर्याय चुनिए ।
१) कन्ना/कन्नाए पाढसालं गच्छंति ।
२) ते देवयासुं/देवयाओ वंदंति ।
३) पसंसाए/पसंसे को ण सुहावेइ ?
४) निवो/निवा गामं रक्खइ ।
५) दाणेसु/दाणेणं अभयदाणं सेट्ठं ।

****

(१०) शब्दसूचि

जैनॉलॉजी परिचय (१) मधील पाठ १८ इंग्रजी शब्दांचा इंडेक्स द्या.